बेग़मपुरा

सभ्यता का आह्वान

साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य

द्विमासिक पत्रिका
जुलाई 2025-अगस्त 2025

संवाद का मंच

व्यक्तित्व व कृतित्व के मंच पर

प्रो. विवेक कुमार

सीधा संवाद के मंच पर

प्रो. सरोज कुमारी, डॉ. सर्वेश कुमार मौर्या

मा. राजेंद्र बाबू ढोके

कथा-कहानी के मंच पर

प्रो. नामदेव, मा. अनंत आनंद

मा. राजेश कुमार बौद्ध

अतिथि कवयित्री एवं आमंत्रित कवि के मंच पर

मा. कर्मशील भारती

डॉ. वर्षा सोलंकी, डॉ. सीमा माथुर

मा. विद्या राजेंद्र मोरे, मा. महेंद्र सिंह कामा

निरख-परख के मंच पर

मा. बलराम अग्रवाल

साक्षात्कार

डॉ. अमित धर्मसिंह की

मा. रत्नकुमार सांभरिया से भेंट

भारत का अन्तर्मन

हमारे बारे में

'बेग़मपुराः सभ्यता का आह्वान' द्विमासिक पत्रिका है, जिसका इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉफ्रेंस उपक्रम मूलनिवासी सभ्यता संघ द्वारा पीडीएफ प्रारूप में वेबबेस प्रकाशन किया जा रहा है। इसका प्रबंधन, वेब प्रकाशन मई–जून 2025 से किया जा रहा है। यह पत्रिका अंबेडकरवादी विचारधारा से परिचालित है जिसमें तथागत गौतम बुद्ध, रैदास, कबीर, फुले व पेरियार से लेकर मौजूदा मानवतावादी दर्शन शामिल हैं। समाज में समता, स्वतंत्रता, बंधुता की स्थापना हेतु यह पत्रिका मैत्री, प्रेम और सहिष्णुता की भावना को बढ़ाने का कार्य करती है। समाज में उपेक्षित–अधिकारविहीन व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना, संविधान की उद्देशिका के अनुरूप भारतीय समाज का मानस तैयार करना तथा भौतिक बुद्धिवाद की भारतीय सभ्यता का विकास करना इस पत्रिका उद्देश्य है।

पत्रिका के लिए सामग्री भेजते समय ध्यान रखने योग्य बातें

✎साहित्यिक रचनाओं के पुनर्पाठ, आलोचना के पूर्व प्रतिमानों की पुनर्व्याख्या करते हुए शोध आलेख, आलोचकों की आलोचना, पुस्तकों को आधार बनाकर लिखें गए लेख, समसामयिक और ऐतिहासिक महत्व की पुस्तकों पर आधारित सूचनापरक लेख, बहुजन साहित्य की धारा जैसे दलित–आदिवासी–पिछड़ा वर्ग के बहुजन नायकों, कलाओं, गीतों और पेशों की जानकारी देते शोधपरक लेख।

✎सामग्री की शब्द सीमा 3 से 5 हजार है। सभी प्रकाशकीय सामग्री यूनिकोड में टाइप और अप्रकाशित होनी चाहिए। भाषिक शालीनता का ख्याल रखा जाए।

✎प्रकाशित होने वाली सामग्री का चयन संपादक मंडल द्वारा किया जाएगा।

✎संपादक को मूल भावना के अनुरूप आंशिक संशोधन/टिप्पणी करने का अधिकार होगा।

बेग़मपुरा
सभ्यता का आह्वान
साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य
वर्ष 1 | अंक 2 | जुलाई-अगस्त 2025 | दिल्ली

परामर्श मंडल

मा. बुद्धशरण हंस, मा. द्वारका भारती, मा. कर्मशील भारती, डॉ. कुसुम वियोगी, मा. विपिन बिहारी

पूर्व समीक्षक

प्रो. (डॉ.) नीलम, लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रो. (डॉ.) गोरख निळोबा बनसोडे (शोध निदेशक), हिंदी विभाग सरदार बाबासाहेब माने महाविद्यालय, सातारा, संबद्ध-शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र।

डॉ. प्रभाकर निसर्गंध, एसोसिएट प्रोफेसर, श्रीविजय सिंह यादव कॉलेज, पेठ गांव, कोल्हापुर सबंद्ध -शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र।

डॉ. देवी प्रसाद (आचार्य), सेठ नन्दकिशोर पटवारी राजकीय महाविद्यालय, नीम का थाना, संबद्ध -पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

प्रो. (डॉ.) सनोज कुमार, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रधान संपादक	कार्यकारी संपादक
दयाराम	**शीलबोधि**
9368125292	9971566918

संपादक मंडल

डॉ. नीलिमा बागड़े	डॉ. श्यामसुंदर मिरजकर	डॉ. हरे राम सिंह	डॉ. अमित धर्मसिंह	डॉ. पूरन सिंह
9407352073	9421212352	8544034280	9310044324	9868846388

प्रकाशन प्रबंधन : इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉन्फ्रेंस, नई दिल्ली
(मूलनिवासी सभ्यता संघ का उपक्रम)

संपादकीय कार्यालय

527-ए, निकट आंबेडकर पार्क, नेहरु कुटिया, कबीर बस्ती, मल्कागंज, दिल्ली-110007

सहयोग राशि रु. 150 वार्षिक

शब्द संयोजन-सुनील कुमार बौद्ध | आवरण-महेश कुमार पासवान

'बेग़मपुरा: सभ्यता का आह्वान' में प्रकाशन संबंधी निर्णय संपादक मंडल द्वारा सामूहिक रूप से लिए जाते हैं, प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं, जिनसे संपादक मंडल की सहमति होना अनिवार्य नहीं है, संपादक मंडल को प्रकाशित होने वाली सामग्री में संशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार होगा, 'बेग़मपुरा: सभ्यता का आह्वान' से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है।

'बेग़मपुरा: सभ्यता का आह्वान' मूलनिवासी सभ्यता संघ के लिए मू. सुनील कुमार द्वारा ई पत्रिका के रूप में प्रकाशित करते हुए इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉन्फ्रेंस की वेबसाइट पर जारी, संपादक शीलबोधि

बेग़मपुरा
सभ्यता का आह्वान
साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य

वर्ष 1 | अंक 1 | जुलाई-अगस्त 2025 | दिल्ली

संपादकीय

बेग़मपुरा:एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में विचारधारा हस्तांतरण -**शीलबोधि**☛3

व्यक्तित्व व कृतित्व

प्रो. नन्दू राम:भारतीय समाजशास्त्र की समग्रता की प्रेरणा-**प्रो. विवेक कुमार**☛23

सीधा संवाद

आदिवासी समाज, साहित्य और कलाचार -**प्रो. सरोज कुमारी**☛7

दलित मुक्ति दर्शन : समस्याएं और संभावनाएं -**डॉ. सर्वेश कुमार मौर्य**☛13

भारत में कुल परंपरा:उत्पत्ति, उद्‌भव एवं विकास -**मा. राजेंद्र बाबू ढोके**☛17

साक्षात्कार

वरिष्ठ साहित्यकार **मा.रत्नकुमार सांभरिया** से **डॉ. अमित धर्मसिंह** की बातचीत☛24

अतिथि कवि/कवयित्री

मा. कर्मशील भारती का रचना संसार की झलकी☛30

काव्य संगीति

डॉ. वर्षा सोलंकी की कविताएं☛34

डॉ. सीमा माथुर की कविताएं☛36

मा. पंकज चौधरी की कविताएं☛38

मा. विद्या राजेंद्र मोरे की कविताएं☛40

मा. महेंद्र सिंह कामा की कविताएं☛42

कथा-कहानी मंच

पलायन -**प्रो. नामदेव**☛44

अस्मिता लहू-लुहान -**मा. राजेश कुमार बौद्ध**:49

गति मुक्ति-**मा. अनन्त आलोक**☛52

निरख-परख

सवालों के गुंजन से जूझते डॉ. पूरन सिंह -मा. बलराम अग्रवाल☛61

प्रतिवेदन

इंडियन नेशनल लिटरेचर कान्फ्रेंस, गुजरात व पंजाब☛48/68))

बेग़मपुरा

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में विचारधारा हस्तांतरण

शीलबोधि

बेग़मपुरा आम लोगों के लिए बिल्कुल नया शब्द हो सकता है। उन लोगों के लिए भी जो डॉ. आंबेडकर के विचारों से प्रभावित है। बेग़मपुरा को समझने के लिए कुछ मूलभूत ऐतिहासिक व दार्शनिक जानकारी का होना जरूरी है, जो शृंखलाबद्ध रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को जोड़ती है। जिस पर हम पिछले अंक में बात कर चुके हैं। डॉ. आंबेडकर ने कारवां शब्द का प्रयोग कौम के उत्थान व पतन के इतिहास को वर्तमान से जोड़ने के लिए किया होगा। उन्होंने पूरे समाज को बौद्ध धम्म में समाहित करने की कोशिश को कारवां कहा था। ऐसा मुझे इसलिए भी लगा कि उन्होंने आमदनी का बीसवां भाग यानी पांच फीसदी बौद्ध धम्म के प्रचार–प्रसार व विकास पर खर्च करने की सलाह अपने अनुयायियों को दी थी। बौद्ध धम्म क्या है, जिसपर कौम का 5 फीसदी धन खर्च हो। बौद्ध धम्म को कम से कम शब्दों में समझने के लिए इसके चार आर्य सत्य को जान लेना काफी है। ये चार आर्य सत्य हैं, पहला–दुख है, दूसरा–दुख का कारण है, तीसरा–दुख का निरोध किया जा सकता है और चौथा दुख के निरोध का उपाय है। इन चार बातों की व्याख्या और इन चार बातों को लागू करने की व्यवस्था ही बौद्ध धम्म है। इन चार आर्य सत्यों में जिस बात की प्रमुखता है, वह है–दुख। बुद्ध ने केवल दुख मुक्ति के उपाय के रूप में अपनी देशना दी थी। दुख पर बुद्ध का चिंतन बिल्कुल नया नहीं है, चार्वाक के 'सुखवाद' में ही नहीं बल्कि कपिल के सांख्य में भी 'दुख' चिंतन के केंद्र में है। तथागत गौतम बुद्ध ने 'दुख' पर केंद्रित इसी चिंतन परंपरा का परिष्कृत रूप बौद्ध धम्म के रूप में प्रस्तुत किया था। वाद–विवाद की परंपरा में हम बौद्ध धम्म को 'भारतीय बुद्धिवाद' की संज्ञा भी दे सकते हैं। मध्यकाल में 'दुख' शब्द के स्थान पर 'ग़म' शब्द का प्रयोग किया जाता था। दुख से मुक्ति के चिंतन को रैदास और कबीर ने 'बेग़म' कहा था यानी ग़म–विहीन स्थिति।

जिस समय तथागत गौतम बुद्ध दुख मुक्त जीवन का संज्ञान ले रहे थे, उस समय की राजनीति गौतम बुद्ध का विरोध नहीं कर रही थी बल्कि समर्थन व सहयोग कर रही

थी। ऐसी ही हालात सांख्य के कपिल और लोकायत के चार्वाक की थी, हम नहीं कह सकते, क्योंकि राजनीतिक इतिहास की शुरुआत बुद्धकाल से ही होती है। कपिल मुनि का काल बुद्ध से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व है तो चार्वाक का समय लगभग ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व का है। इस समय का राजनीतिक इतिहास नहीं है। रैदास व कबीर को तत्कालीन राजनीति का समर्थन नहीं मिला बल्कि उन्हें इस्लाम व वैदिक राजनीतिक शक्ति के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था। रैदास व कबीर के पास चार्वाक व कपिल सहित गौतम बुद्ध के चिंतन की महान विरासत पहुंची थी। इस बात को हमने अपने पिछले अंक के संपादकीय में पहले ही स्पष्ट कर दिया है।

विचार से विचारधारा का निर्माण होता है। विचार किसी व्यक्ति या समय की बपौती हो सकता है, लेकिन विचारधारा किसी व्यक्ति या समय की बपौती नहीं हो सकती। जब डॉ. आंबेडकर 'बुद्ध और धम्म' में लिखते हैं कि बुद्ध ने कपिल के सांख्य से 70 फीसदी से ज्यादा ग्रहण किया, तब इसका मतलब है कि अपने से पूर्व के विचारों को गौतम बुद्ध ग्रहण करते हैं और आगे के समय को अपने परिष्कृत विचार सौंपते हैं, नागार्जुन, सरहपा, मच्छेंद्र नाथ, जालंधर नाथ और फिर रैदास-कबीर तक पहुंचते हैं। विचार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्तियों तक हस्तांतरित होता है और एक समय से दूसरे समय में स्थानांतरित होता है। इस प्रक्रिया में विचार अपना सफर विचारधारा में निहित होकर पूरा करता है।

एक व्यक्ति के विचार से दूसरे व्यक्ति के विचार यदि सुसंगत रूप से समरूपता रखते हैं, तब दोनों व्यक्तियों के बीच वैचारिक तालमेल बैठ सकता है। कुछ समान ऑइडिया तो समरूप हो जाएंगे, लेकिन जो ऑइडिया दोनों व्यक्तियों के अलग-अलग हैं, उनमें से कुछ को वे आपस में विचार-विमर्श करके स्वीकार कर लेंगे और कुछ को स्वीकार नहीं करेंगे। इस तरह से एक सुगठित विचारधारा अपने अस्तित्व को मजबूत करती है। सुगठित विचार-धारा तभी अस्तित्व में आएगी जब, जिसे हासिल किया जाना है वैसे उद्देश्य, लक्ष्य की भांति आंखों के सामने होंगे। किसी विचार से सहमति रखने वाले तत्कालीन पीढ़ी के विशिष्ट लोग ही विचार का समावेश विचार-धारा में करते हैं, इसी वजह से चिंतन-मनन करने वाली तत्कालीन पीढ़ी के विशिष्ठ लोग ही विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। वर्तमान पीढ़ी का आचार-विचार ही विचारधारा का मजबूत पक्ष होता है।

विचारधारा के कारण पिछली पीढ़ी के चिंतन-मनन और अनुभव के प्रतिफल अगली पीढ़ी को विरासत में मिलते हैं। वर्तमान पीढ़ी की बहुत-सी समस्या का समाधान पीछे से आई ज्ञान परंपरा से हो जाता है, लेकिन सभी का नहीं। माता-पिता के पास ऐसी बेशक़ीमती बातें होती हैं, जिन्हें वे समय-समय पर अपनी मौजूदा पीढ़ी को हस्तांतरित करते हैं। यह काम रिले रेस की भांति होता है। जिसमें खिलाड़ी को बने-बनाए मार्ग पर ही दौड़ना होता है। इस रेस में एक खिलाड़ी निश्चित दूरी तक दौड़कर आगे खड़े धावक के हाथ में बैटन पकड़ाता है, यही काम आगे का धावक करता है। विचारधारा का बैटन लेकर चलने वाली एक पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को बैटन पकड़ाती है, यह अगली पीढ़ी भी अपनी से अगली पीढ़ी को बैटन पकड़ाती है। इस तरह से बैटन थमाने की कार्यवाही तब तक चलती रहती है जब तक विचार-धारा का बैटन थमाने वाली और बैटन थामने वाली पीढ़ी मौजूद होती है। पिछली पीढ़ी जैसी उन्नत विचार-धारा मौजूदा पीढ़ी को देती है, मौजूदा पीढ़ी उसमें गुणात्मक विकास करके अपने से अगली पीढ़ी को विचारधारा का बैटन सौंपती है।

उपरोक्त बात को पुनः यूं भी देखा जा सकता है कि प्रत्येक पीढ़ी के अपने जीवन संघर्ष होते हैं, जिनमें से बहुत-सी समस्याओं का समाधान पिछली पीढ़ी द्वारा दिये जा चुके होते हैं। कुछेक ऐसी भी समस्याएं होती हैं, जिनका समाधान पिछली पीढ़ी नहीं खोज पाती, उन समस्याओं का समाधान वर्तमान व भावी पीढ़ी को खोजने होते हैं। इसके अलावा वर्तमान समय की नई किस्म की समस्याओं के समाधान भी वर्तमान और भावी पीढ़ी के हिस्से में आते हैं। विचार-धारा उन अनुभव को संभालकर अगली पीढ़ी को सौंपती है, जिसकी मदद से यह जाना जा सकता है कि उन्होंने अपने समय में किसी समस्या को कैसे देखा, कैसे समझा और फिर कैसे उसका समाधान दिया। एक समस्या दूसरी समस्या से अलग रही होगी तब उस समस्या को देखने, समझने और उसका समाधान भी अलग तरीके से दिया गया होगा। अंग्रेज अपनी आत्मकथा लिखते हैं, वे भावी

पीढ़ी को अपनी धन-दौलत ही नहीं देते बल्कि अपने अनुभवों को भी देते हैं। आत्मकथा अनुभव को विरासत में देने के लिए लिखी जाती है। इस तरह से समस्या के समाधान के अनुभव वर्तमान पीढ़ी को विरासत में मिलते हैं। एक चींटी भोजन की तलाश में बिल से निकलती है। वह इधर-उधर भटककर भोजन खोज लेती है। अब भोजन को बिल तक पहुंचाने के समय वह एक गंध छोड़ती हुई जाती है, इससे एक गंध-मार्ग निर्मित हो जाता है। इसी गंध-मार्ग का अनुसरण बाकी की चींटियां करती हैं। कम समय, कम प्रयास और कम मेहनत में भोजन को बिल तक ले आती हैं। हर पीढ़ी अपनी मानसिक व शारीरिक मेहनत का प्रतिफल अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करती है।

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अनुभव कैसे हस्तांतरित होते हैं। बर्तन, औजार, हथियार, कृषि, लेखन, प्रबंधन, प्रशासन और शासन से जुड़े लोग अपने अनुभवों का संचित ज्ञान उस व्यक्ति को देते हैं, जो उनके काम को आगे बढ़ाने के लिए आता है। लिखित या मौखिक साहित्य से ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होता है।

विभिन्न कलाओं में कर्ता और कर्म के संबंधों के बीच विशेष प्रकार की नैतिकता मौजूद होती है, जो कर्ता, क्रिया और कर्म को निश्चित परंपरा से बांधती है, जिससे सभ्यता का विकासशील या विकसित रूप सामने आता है। सर्जनात्मक साहित्य कर्ता और कर्म के बीच नैतिक संबंधों को निरंतर मजबूत करता है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के संबंध परस्पर सहयोग और आदान-प्रदान के होते हैं। समाज का आधार यही परस्पर सहयोग और आदान-प्रदान है। दो व्यक्तियों के बीच स्थापित नैतिकता उन विचारकों की देन होती है, जिनके विचार कर्ता और कर्म के बीच नैतिक संबंध स्थापित करते हैं। साहित्यकार विचारकों के विचार को वैसे प्रारूप में संप्रेषित करते हैं, जिससे साधारण व्यक्ति भी सहजता से विचारों को समझ सके और विचारों को अपने आचरण का हिस्सा बना सके। कहानी व कविताएं आमतौर पर संगीत, नृत्य व नाटकों के सहारे, कर्ता व कर्म के बीच, विचारों की वजह से उत्पन्न 'नैतिकता' स्थापित करती है। यही नैतिक परंपरा, रीति-रिवाज के रूप में सामाजिक मूल्य और मानदंड तय करती है। रीति-रिवाज के रूप में सामाजिक मूल्य और मानदंड छितराई हुई भीड़ को समाज का रूप देते हैं। इस पूरी प्रक्रिया को, समझ लेने के बाद, हमें यह समझ आ जाता है कि *'साहित्य का आंदोलन और आंदोलन का साहित्य'* की नितांत जरूरत है।

एक विचारक के रूप में डॉ. आंबेडकर आज केंद्र में हैं, लेकिन वे अपने तीन गुरु बताते हैं। तीन गुरु बताने का आशय क्या है? यही कि वे जिस विचार का आज प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, वह विचार जोतिबा फुले, कबीर और गौतम बुद्ध से लिया है। फुले, कबीर और गौतम बुद्ध पीछे की ओर जाती पीढ़ियां हैं, जिस तत्कालीन समय में डॉ. आंबेडकर खड़े होकर बोल रहे थे, वह उनका वर्तमान था, जिसमें वे भावी पीढ़ियों को वह ज्ञान जो उन्होंने अपने वैचारिक पुरखों से प्राप्त किया था, अगली पीढ़ी को परिष्कृत करके दे रहे थे।

हमारे समय की पीढ़ी क्योंकि अपने अतीत की ज्ञान-शृंखला से जुड़ नहीं रही है, इसलिए उनका बौद्धिक स्तर अपनी बौद्धिक परंपरा की पिछली पीढ़ी के बौद्धिक स्तर से बहुत कम है। दूसरे शब्दों में, कला का विकास उन विचारकों के दृष्टिकोण से गहराई तक प्रभावित होता है, जो सामाजिक शक्ति के नियंत्रण व प्रबंधन का नजरिया देते हैं। विचारक अपनी पिछली पीढ़ी से ज्ञान ग्रहण करके अगली पीढ़ी को परिष्कृत रूप में विचार हस्तांतरित करते हैं। यही आचार-विचार का हस्तांतरण सभ्यता को युगों तक अक्षुण्ण और जीवंत बनाए रखता है। यदि आचार-विचार का हस्तांतरण, विच्छिन्न हो जाता है, तब कौम के हिस्से में पिछड़ापन और पराधीनता आती है।

एक ही समय में कई तरह की सभ्यता और विचारधाराएं मौजूद रहती हैं। उनके बीच परस्पर हितों का टकराव होने के साथ, एक का दूसरे पर आधिपत्य का संघर्ष भी होता है। जो सभ्यता अपने वैचारिक (दार्शनिक) पक्ष व कलाचारिक पक्ष (cultural side) से कमजोर पड़ती है, खुद ब खुद पराधीनता की स्थिति में पहुंच जाती है।

प्रत्येक पीढ़ी का यह दायित्व होता है और होना भी चाहिए कि वह स्वयं को दूसरों के अधीन होने से बचाकर रखें। रैदास तो पराधीनता को पाप मान रहे थे। इस्लाम, वैदिक और ईसाई ये केवल धर्म या सांप्रदाय ही नहीं हैं, बल्कि सभ्यताएं हैं। इनके पास विचार और विचारकों की हजारों सालों की अविच्छिन्न शृंखला मौजूद

है, जिन्होंने अपने प्रभाव क्षेत्र के अंदर आने वाले संगठित लोगों के आचार-विचार को अनुशासित करने के लिए कर्ता और कर्म के बीच 'नैतिकता का पालन' स्थापित किया है।

अछूत, आदिवासी और पिछड़ा वर्ग की तीन अवधारणाएं बहुत आधुनिक हैं, जाति के रूप में तो इस जनसमूह को हजारों टुकड़ों में बांट दिया गया है। यह बंटवारा केवल व्यक्ति का बंटवारा नहीं है, बल्कि व्यक्ति की शक्ति का भी बंटवारा है। जाति के रूप में हमारे समाज के बंटवारे को बहुजन विचारकों ने एक साजिस की भांति देखा, हम भी देख रहे हैं, लेकिन हम यह नहीं देख रहे हैं कि जाति की भांति ही अछूत, आदिवासी व पिछड़ा का बंटवारा भी बहुजन की शक्ति का छितराया हुआ विच्छिन्न स्वरूप है, जो परस्पर एक-दूसरे से कटे होने के कारण, एक होते हुए भी, एक नहीं है, राजनीतिक रूप से शक्तिशाली होते हुए भी शक्तिहीन है।

प्रत्येक बीज का भूत और भविष्य है। भूत उपलब्धि है लेकिन भविष्य केवल लक्ष्य है। भूत का होना निश्चित है कि वह होगा ही होगा, लेकिन भविष्य का होना तय नहीं है कि वह होगा। जानकारी जो ज्ञान का आधार बनती है, हमेशा भूतकाल से मिलती है। जिसके पास भूतकाल की विरासत नहीं, उसके वर्तमान का कोई औचित्य नहीं, जिसके वर्तमान का औचित्य नहीं है, उसे कभी भी मिटाया जा सकता है, उसका भविष्य संदिग्ध है। दलित, आदिवासी और पिछड़ा यदि हमारा वैसा वर्तमान है, जिसके पास भूतकाल की ज्ञान- शृंखला नहीं है, तब उसका अगले दिन का भविष्य भी निश्चित नहीं है। ऐसा कोई भी जनसमूह जिसके पास मजबूत उपलब्ध भूतकाल की विरासत है, कमजोर और कम ज्ञान शृंखला वाले जनसमूह पर अपना आधिपत्य जमाकर अपने अधीन कर लेता है यानी पराधीन कर लेता है। हमारी वर्तमान पीढ़ी अपनी विरासत को रीति-रिवाज, परंपरा, गीत-संगीत और साहित्य में स्थापित करके अपनी अगली पीढ़ी को यदि नहीं देती है, तो अगामी पीढ़ी पर किसी और सभ्यता का अनुशासन शासन करेगा, कर रहा है। इसलिए हमे साहित्य का आंदोलन और आंदोलन के लिए साहित्य की जरूरत है। एससी, एसटी और ओबीसी के रूप में बहुजनों के पास अपनी मजबूत ज्ञान-शृंखला है, और उसका इतिहास भी है। बस! दुखद स्थिति यह है कि बीते समय में ज्ञान-परंपरा और उसके इतिहास की शृंखलाबद्ध कड़ियां जगह-जगह से टूट गई हैं। अब करना यह है कि टूटी हुई कड़ियों को तथ्यों की खोज करके और जहां तथ्य नहीं मिलते वहां परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर जोड़ा जाए। इस दिशा में डॉ. आंबेडकर ने काफी काम किया था, उन्होंने अपनी वर्तमान व भावी वैचारिक पीढ़ियों को पुरखों की संबद्ध ज्ञान परंपरा और उनके गौरवशाली इतिहास से जोड़ा था।

हम इस पत्रिका को 'मजबूत और उन्नत अतीत' को 'वर्तमान' से जोड़कर 'सुनहरा भविष्य' को हासिल करने के लक्ष्य के तहत निकाल रहे हैं। आपका सहयोग ही सुनहरे भविष्य तक हम-सब के पहुंचने की गारंटी है। और अंत में कहूंगा कि...

...डॉ. रजनीश गंगवार ने अपने विद्यार्थियों को 'तुम ज्ञान का दीप जलाइओ' कविता सुनाई, अज्ञानी लोग ज्ञान का दीप बुझाने लग गये। एक सज्जन संत सिंह यादव जो इटावा, उ.प्र. में ब्राह्मणों के घर जाकर अपना दीया जला रहे थे, वहां के ब्राह्मणों ने उनका दीपक ठीक से बुझा दिया। यादव शिक्षिका के रूप में अपनी पहचान रखने वाली शिक्षिका एससी बच्चों को अपने से दूर-दूर रहने की शिक्षा दे रही है। मुख्यमंत्री रहे एक यादव, उनकी ही परंपरा को मजबूत करने में लग गये, जिन्होंने उनके द्वारा छोड़े गए सरकारी आवास को गंगा जल से धुलवाकर अपमानित किया था। यह व्यक्तिगत दोष नहीं है, बल्कि सब उस अज्ञानता के कारण है, जिसमें यह पता नहीं चल पा रहा है कि कौन-सी सोच अपनी है, कौन-सी सोच हमारे ऊपर घातक हमला करने वाली है। बेशक हमारे बड़े हमें हमारी विचारधारा नहीं देकर जा सके, लेकिन हमें खोजबीन करके अपनी विचार-धारा का अतीत और वहां मौजूद ज्ञान के खजाने को हासिल करना है। जैसे कि डॉ. आंबेडकर कहते थे, 'जो इतिहास नहीं जानता वह इतिहास नहीं बना सकता है।' राजाओं का ही इतिहास नहीं होता, विचारधारा का भी इतिहास होता है, यही इतिहास हमारे वर्तमान को मजबूत करने की सबसे महत्वपूर्ण चीज है।

सीधा संवाद

आदिवासी समाज, साहित्य और कलाचार

प्रो. सरोज कुमारी

आपकी साहित्यिक आलोचना व स्त्री लेखन व विमर्श पर 15 पुस्तकें प्रकाशित है। नवीनतम प्रकाशित पुस्तक 'साहित्य का स्त्रीवादी पाठ' (2025) है। विभिन्न राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में 50 से अधिक शोधपत्र की प्रस्तुति कर चुकी है। आपको महाश्वेता देवी राष्ट्रीय पुरस्कार-2020, जन मीडिया पुरस्कार-2020, विष्णु प्रभाकर राष्ट्रीय सम्मान -2020 प्राप्त हुआ है।
अध्यापन कार्य,
दिल्ली विश्वविद्यालय।
संपर्क : 8587037978

साहित्य सृजन की प्रक्रिया में नये-नये विमर्श का आना स्वाभाविक है। स्त्री विमर्श के बाद दलित विमर्श और अब आदिवासी विमर्श अपने चरम पर है। साहित्य में बड़े स्तर पर आदिवासी तथा गैर-आदिवासी लेखक साहित्य सृजन की प्रक्रिया में नये आदिवासी साहित्य का निर्माण कर रहे हैं। आज विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं पुस्तकों के केंद्र में आदिवासी समाज है। गोष्ठियों के मंचों पर भी आदिवासी समाज बहस का बिंदु बना हुआ है। आदिवासी लेखक तथा गैर आदिवासी लेखक अपने-अपने नजरिए से आदिवासी समाज की परिभाषा गढ़ रहे हैं। नवोदित साहित्यकारों ने अब यह कहना शुरू कर दिया है कि बहुत हो गया स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अब केवल आदिवासी विमर्श। बहुत अच्छा है, कम से कम वर्तमान साहित्यकारों ने इस मुद्दे को प्राथमिकता तो दी चाहे सरकारी योजनाओं में आदिवासियों की समस्याएं तथा उनके समाज और कलाचार को प्रमुखता नहीं दी जा रही हो। यहां पर एक तथ्य पर विचार कर लेना अनिवार्य है कि कुछ विमर्श शाश्वत होते हैं, वे कभी समाप्त नहीं हो सकते, परिस्थितियों के अनुसार उनकी समस्याओं का रूप बदलता रहता है किंतु समस्याएं बराबर बनी रहती है, दलित विमर्श और स्त्री विमर्श भी वैसे ही हैं।

आदिवासी विमर्श बहुत देरी से साहित्य के केंद्र में आया। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श के बाद अब आदिवासी साहित्य शोधार्थियों और पाठकों की रुचि का विषय बनता जा रहा है। महाश्वेता देवी ने काफी लंबे समय तक इस विषय पर लेखनी चलाई। रमणिका गुप्ता बहुत लंबे अर्से से आदिवासी विमर्श को आगे बढ़ाने का कार्य कर रही थी। विद्वानों का मत है कि आदिवासी साहित्य दलित विमर्श एवं स्त्री विमर्श की तरह नहीं लिखा जा सकता। कारण-लेखक आदिवासी कलाचार से परिचित हुए बिना कुछ भी नहीं लिख सकता क्योंकि आदिवासी आज भी समाज की

आदिवासी समाज के मूलदर्शन को समझकर जो साहित्य लिखा जाए उसे आदिवासी साहित्य माना जाए तो कोई संदेह नहीं। आदिवासी दर्शन ही वह तत्त्व है जो आदिवासी समाज और साहित्य को शेष, समाज और साहित्य से अलग करता है।

मुख्यधारा से दूर है। एक आदिवासी लेखक ही इस संबंध में न्याय कर सकता है। वीर भारत तलवार ने आदिवासी साहित्य को तीन वर्गों में विभाजित करने की पहल की है–आदिवासियों के बारे में लिखा गया साहित्य, आदिवासियों के द्वारा लिखा गया साहित्य और आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य।

आदिवासी चिंतक और आलोचक साहित्य में वर्णित वन और आदिवासी जनजातियों के प्रसंग को आदिवासी साहित्य की परिधि से बाहर रखते हैं जैसे 'रामचरितमानस' का शबरी प्रसंग, रेणु के 'मैला आंचल' का संथाल प्रसंग एवं योगेन्द्र नाथ सिन्हा के 'वन लक्ष्मी' आदि को आदिवासी साहित्य नहीं माना जा सकता।[1]

स्त्री विमर्श आदिवासी विमर्श के आधार पर निर्मित है। इसके संबंध में यह तर्क समीचीन होगा कि 'अनुभूति की प्रमाणिकता किसी साहित्य का एकमात्र आधार नहीं हो सकती।' किसी समुदाय की संवेदना के साथ जुड़ना, उसकी समस्याओं और चुनौतियों को उजागर करने के लिए उस समुदाय में पैदा होना आवश्यक नहीं जो लोग आदिवासी समाज में पैदा हुए किंतु दूसरों समुदायों से जुड़ गये तो उनका दर्शन भी प्रभावित होगा। इसमें दो राय नहीं। हां, आदिवासी समाज के मूलदर्शन को समझकर जो साहित्य लिखा जाए उसे आदिवासी साहित्य माना जाए तो कोई संदेह नहीं। आदिवासी दर्शन ही वह तत्त्व है जो आदिवासी समाज और साहित्य को शेष, समाज और साहित्य से अलग करता है। 'आदिवासी दर्शन आदिवासी साहित्य की मूल शर्त है। इसे बचाना ही आदिवासी साहित्य आंदोलन का मुख्य ध्येय।'[2] आदिवासी साहित्य आदिवासी दर्शन पर आधारित गैर–आदिवासी समुदायों द्वारा किए जा रहे शोषण और आदिवासियों के अस्तित्व के लिए किए जा रहे आंदोलन की प्रतिध्वनि का साहित्य है। यह एक परिवर्तनशील प्रक्रिया के प्रति किसी समाज का रचनात्मक हस्तक्षेप है और उनके आत्मनिर्भरता के अधिकार की पहल भी है–

आदिवासी साहित्य–परंपरा की श्रृंखला में तीन तरह का साहित्य मिलता है–

1. पुरखा साहित्य
2. आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य की परंपरा
3. समकालीन आदिवासी लेखन

आदिवासी दर्शन व साहित्य में हजारों वर्षों के मौखिक साहित्य को पुरखा साहित्य कहा गया है। संसार के लगभग हर साहित्य का पूर्व–रूप मौखिक ही रहा है। आदिवासी साहित्य परंपरा में पुरखा साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह परंपरा विभिन्न आदिवासी समुदायों की भाषा में मौजूद है। इनकी इसी मौखिक परंपरा के माध्यम से आदिवासियों के जीव–दर्शन, ज्ञान परंपरा, मूल्यों–विश्वासों आदि को समझा जा सकता है।

वर्तमान में उपलब्ध सामग्री के अनुसार मेन्नस ओड़ेय का 'मनुराज कहानि' नामक मुंडारी उपन्यास पहला आदिवासी उपन्यास है। इसकी रचना 20वीं सदी के दूसरे दशक में की गई। आदिवासी भाषाओं और समाजों से विभिन्न विधाओं का चयन करके आदिवासी लेखकों ने सर्वथा मौलिक लेखन किया है, चाहे वह अपनी मातृभाषा में हो या किसी अन्य भाषा में। आज इन भाषाओं में लिखे गए साहित्य के विभिन्न अनुवाद उपलब्ध हैं जिस पर आधारित बहुत सारी किताबें प्रकाशित हो रही हैं।

समकालीन आदिवासी लेखन अपने पूर्व साहित्य पुरखा साहित्य और आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखा जा रहा है। हिंदी में लेखकों के प्रभाव स्वरूप आदिवासी लेखकों ने लगभग तीन दशक पूर्व से हिंदी में भी लिखना शुरू कर दिया है। इन तीन दशकों में विपुल, गंभीर और आदिवासियों की चिंताओं को केंद्र में रखकर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें सामने आईं। आज आदिवासी लेखन साहित्य की विभिन्न विधाओं में हो रहा है। आदिवासी कविता लेखन में सुशीला सामद का

नाम सबसे पहले आता है किंतु रामदयाल मुंडा से समकालीन हिंदी कविता की शुरुआत मानी जाती है। उनके बाद गेस कुजूर, रोज केरकेट्टा, हरि राम मीणा, महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, वन्दना टेटे, विजय सिंह मीणा, अनुज लुगुन का नाम आता है। कथा लेखन के क्षेत्र में मंगल सिंह मुंडा, विजय सिंह मीणा तथा हरि राम मीणा का नाम महत्वपूर्ण है। शंकर लाल मीणा, मंगल सिंह मुंडा, रोज केरकेट्टा आदि ने कथा साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

वंदना टेटे के शब्दों में—'आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है, जो मानता है कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़-चेतन, सभी कुछ सुंदर है। वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है। आदिवासी साहित्य को लोक साहित्य होने, अनगढ़ होने और प्रतिरोध का साहित्य होने की संज्ञा दी जाती है किंतु वंदना टेटे इस बात को खंडन करती है। आदिवासी साहित्य सौंदर्य को समग्रता में देखता है। उनके यहां मनुष्य जितना सुंदर है। प्रकृति का हर उपादान पशु-पक्षी, नदियां, पहाड़, झरने, पेड़-फूल सभी महत्वपूर्ण और सौंदर्य से आच्छादित है। आदिवासी साहित्य वेदना, रुदन और प्रतिरोध का साहित्य भर नहीं है अपितु आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है, जो मानता है कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़-चेतना, सभी कुछ सुंदर है। वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है।'[3] केदार प्रसाद मीणा ने लिखा है—'आदिवासियों से संबंधित औसत साहित्य वह है, जिसमें इनकी आंतरिक जटिलताएं, कोमल भावनाएं, समाज, संस्कृति, धर्म और भाषा की गहरी परतों का चित्रण देखने को नहीं मिलेगा।'[4] प्रारंभ में आदिवासी साहित्य में जो सामग्री उपलब्ध थी वह सिर्फ आदिवासी समाज का उथला चित्रण कही जा सकती है जिसमें आदिवासी गीत-नृत्य, खान-पान, मांसल देह वाली युवतियों, जंगल, पहाड़, झाड़ियों का चित्रण, त्योहारों का वर्णन भर था। आदिवासी समाज की समस्याओं और चुनौतियों की चर्चा तक नहीं थी। ऐसा साहित्य आदिवासी समाज के कलाचार, धर्म, भाषा के विभिन्न प्रश्नों को या तो उठाता ही नहीं या फिर बहुत हल्के अंदाज में शामिल करता है। आदिवासी समाज को समग्रता में समझा जा सकता है, उनकी भाषा, कलाचार, समस्याओं और चिंताओं को शामिल किया जाना भी आवश्यक है।

'आदिवासी चाहते हैं कि विस्थापन जैसे ज्वलंत समस्याओं के साथ-साथ इन सब मुद्दों पर चर्चा हो, ताकि एक तो उनके सच्चे दोस्तों और सच्ची सहानुभूति की सही-सही पहचान हो सके और दूसरी बात आदिवासियों के समाज, उनके साहित्य और उनकी चिंताओं को नहीं समझा गया तो आदिवासी साहित्य की व्यवस्था भी गैर-आदिवासी बुद्धिजीवी नहीं कर सकेंगे।'[5] आदिवासी साहित्य में उन विषयों की चर्चा आवश्यक है जो उनके आंतरिक संघर्ष से जुड़े हैं, उनके यहां स्त्री-पुरुष संबंधों की संरचना कैसी है? समाज गतिशील प्रक्रिया और परंपराओं/रीति-रिवाजों में बदलाव की तहें टटोलना भी इस साहित्य की प्राथमिकता होनी चाहिए। इस दृष्टि से वाहस सोन वणे, राम दयाल मुंडा, निर्मला पुतुल, हरि राम मीणा, अनुज लुगुन आदि का साहित्य इन चिंताओं को केंद्र में रखकर लिखा जा रहा है। इस संबंध में रमेश चन्द मीणा ने अपनी चिंता व्यक्त करते हुए लिखा है—'आदिवासी को समझने में महाश्वेता देवी ने पूरी जिंदगी लगा दी है। आखिर क्या वजह है कि किसान आत्महत्या कर रहे हैं और आदिवासी विस्थापित

आदिवासी दर्शन व साहित्य में हजारों वर्षो के मौखिक साहित्य को पुरखा साहित्य कहा गया है। संसार के लगभग हर साहित्य का पूर्व-रूप मौखिक ही रहा है। आदिवासी साहित्य परंपरा में पुरखा साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह परंपरा विभिन्न आदिवासी समुदायों की भाषा में मौजूद है। इनकी इसी मौखिक परंपरा के माध्यम से आदिवासियों के जीव-दर्शन, ज्ञान परंपरा, मूल्यों-विश्वासों आदि को समझा जा सकता है।

हो रहे हैं। इस विकास को केवल खास आदमियों से प्रेम है। हमारी सरकारें चहुंमुखी विकास के लिए बड़ी–बड़ी परियोजनाओं को ला रही है, मगर उन्हें यह ध्यान नहीं कि इसमें आदिवासियों का जो विनाश हुआ है, उसकी भरपाई कैसे होगी?'[6]

आज का आदिवासी साहित्य आदिवासियों की समस्याओं को गंभीरता से ले रहा है और भविष्य के गहरे संकट की ओर इशारा भी कर रहा है। यह तो आदिवासियों की दुर्दम जिजीविषा का परिणाम है कि इतने विषम परिवेश में भी वे अपने अस्तित्व को बचाए हुए हैं, लगातार मुख्यधारा से जुड़ने के लिए प्रयत्नशील है। वाहरु सोनवणे मराठी के बड़े साहित्यकार हैं। उन्होंने अपनी कविता 'स्टेज' में आदिवासी समाज को हाशिए पर रखने के दर्द को इस तरह व्यक्त किया है–

हम स्टेज पर गए ही नहीं
और हमें बुलाया भी नहीं गया
उंगली के इशारे से
हमें अपनी जगह दिखा दी गई
हम वहीं बैठ गए
हमें शाबाशी मिली
और 'वे' मंच पर खड़े होकर
हमारा दु:ख हमसे ही कहते रहे
हमारा दु:ख हमारा ही रहा
कभी उनका नहीं हो पाया।[7]

यह कविता आदिवासी लेखन के गैर–आदिवासी लेखन से पार्थक्य को भी प्रति ध्वनित करती है। आदिवासी रचनाकार स्वयं अपने समाज, भाषा और कलाचार के बचाव के लिए कटिबद्ध होकर लिख रहे हैं। अपनी अस्मिता को बचाने के लिए वह साहित्य में तरह–तरह के प्रयोग कर अपनी बात रख रहे हैं। महादेव टोप्पो कहते हैं –

आखिर मैं वह क्यों कहलाऊँ
जो कहलाना चाहता नहीं।[8]

अपनी अस्मिता के प्रश्न को अनुज लुगुन अपनी 'अघोषित उल गुलान' कविता में स्पष्ट कर देना चाहते हैं–

लड़ रहे हैं आदिवासी
अघोषित उल गुलान में
कट रहे हैं वृक्ष
माफियाओं की कुल्हाड़ी से और
बढ़ रहे हैं कंक्रीट के जंगल
दांड़ जाए तो कहां जाएं
कहते जंगल में
या बढ़ते जंगल में।[9]

अनुज लुगुन ने क्रांतिकारी आदिवासी कविताओं का सृजन किया है। वे इतिहास, कलाचार, उत्साह, उम्मीद और अधिकारों की मांग को जबरदस्त तरीके से प्रस्तुत करने की हिम्मत रखते हैं। आदिवासी कलाचार के संरक्षण और विकास के लिए वे भारतीय कलाचार और इतिहास से उदाहरण लेकर अपनी बात इस तरह रखते हैं –

मैंने तुम्हें देखा है
अपने परदादा और दादा की
तीरंदाजी में
भाई और पिता की तीरंदाजी में
अपनी मां और बहनों की तीरंदाजी में
हां एकलव्य! मैंने तुम्हें देखा है
वहां से आगे
जहां महाभारत में तुम्हारी कथा समाप्त होती है
हां किसी द्रोण को अपना गुरु न मानना
वह छल करता है
हमारे गुरुतों हैं
जंगल में विचरते शेर, बाघ, हिरण,
बरहा और वृक्षों की छाल

आदिवासी समाज में प्रकृति सर्वोपरि है। उनके पुरखे ही उनके इष्ट देव व गुरु हैं, मिथक और इतिहास के केंद्र में उनका कलाचार ही सर्वश्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त निर्मला पुतुल ने भी आदिवासी सभ्यता और कलाचार के संरक्षण को केंद्र में रखकर अनेक प्रकार की कविताओं का सृजन किया है। 'क्या मैं तुम्हारे लिए हूं' कविता स्त्री विमर्श की कविता है। वहीं पूंजीपतियों की नीतियों का खुला विरोध भी करती है। वे कहती हैं–

नहीं चाहिए हमें उनका अहसान
उठा ले जाएं वे अपनी व्यवस्था
ऐसा विकास नहीं चाहिए हमें
नहीं चाहिए ऐसा बदलाव
नहीं चाहिए!!

पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से आदिवासी सबसे अधिक पर्यावरण प्रेमी है, जल, जंगल, जमीन की सुरक्षा उनके जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है। जंगल में आदिवासियों के प्राण बसते हैं, वहीं उनका जीवन है, वहीं उनकी जीविका भी। आदिवासियों का कलाचार विशेषत: मानवतावादी कलाचार की रही है, फिर उनके साथ अमानवीय व्यवहार क्यों, कहीं झारखंड के कोयला खादानों में वे शोषण का शिकार हो रहे हैं तो कहीं बस्तर में गोलियों का शिकार हो रहे हैं। संवैधनिक अधिकारों के बावजूद वे आज भी अशिक्षा, गरीबी और अन्य समस्याओं से जूझ रहे हैं। आदिवासी साहित्य आज साहित्यिक और राजनीतिक मंचों पर

बड़ी-बड़ी बहसों के केंद्र में है किंतु आदिवासी समाज की वास्तविक चिंताओं से कोसो दूर हैं। सिर्फ साहित्यिक/राजनीतिक मंचों या पत्र-पत्रिकाओं में छाप देने से आदिवासियों का विकास संभव नहीं है।

आदिवासी कवयित्री सतिरा बडाइक की कविताएं आदिवासी साहित्य को बड़ी देन है। उन्होंने नागपुरी और हिंदी में काव्य सृजन किया है। वे अपनी कविता 'सपनों का छोटा नागपुर-दो' में इन्हीं सियासी दाव-पेंचों की ओर इशारा करती हुई लिखती हैं-

झारखंड के सपनों को करने के लिए साकार
जिसने छोड़ा अपना
जमीन-अधिकार
उन्हीं को नक्शे से मिटाने की साजिश
बहुमंजिला इमारतों में
सियासी दांव-पेंच लेन-देन
रिंग रोड और पावर प्लांट के नाम पर
जमीनों की लूट योजनाओं के नाम पर
जमीनों की भूख।[10]

'आजादी के बाद भी भारतीय समाज ने आदिवासियों का शोषण बंद नहीं किया। वे आज भी अपने ही देश की सरकारों के सौतेले रवैये के शिकार हैं। मुख्यधारा का भारतीय समाज और उनकी सरकारें इनका सब कुछ लूटती रही हैं। आदिवासी समुदाय लगातार विस्थापित होते जा रहे हैं। उनकी सामाजिक-कलाचारिक पहचाने नष्ट होती जा रही है, उनके सामाजिक मूल्य उपहास की वस्तु बना दिए जा रहे हैं।'[11] आदिवासी समाज की इन्हीं चिंताओं को आदिवासी साहित्यकारों ने बड़े ही बेबाक अंदाज में अभिव्यक्त किया है। हरि राम मीणा की कविताएं इस दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण है। अपने अस्तित्व की लड़ाई में आदिवासी समुदाय भावों को जस का तस उतारने का प्रयास हरि राम मीणा ने किया है। 'रोया नहीं था यक्ष', हां चांद मेरा है', 'सुबह के इंतजार' में आदि कविता संग्रह भारतीय कलाचार आदि परंपरा में विद्यमान मिथकों से दो-दो हाथ करते हुए आगे बढ़ते हैं। उन्होंने समकालीन आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है। उन्होंने आदिवासी समाज और कलाचार पर व्यापक दृष्टिकोण को अपनाते हुए कार्य किया है। वे उत्तर-पूर्व और दक्षिण से अंडमान तक के आदिवासियों की समस्याओं से रुबरु कराते हैं। उनका प्रस्तुतीकरण हिंदी के कवियों से मिलता-जुलता है। उनकी शैली में सादगी है तो ओज भी है। वे अपनी परंपरा और संस्कृति से पूर्व संवेदना रखते हैं, अपने पुरखों को इतिहास में अमर कर देना चाहते हैं—बिरसा मुंडा को इस सम्मान के साथ याद करते हैं—

उसकी आवाज
जंगलों में अभी भी गूंजती है -
मैं केवल देह नहीं
मैं जंगल का पुश्तैनी दावेदार हूं
पुश्तें और उनके दावे मरते नहीं
मैं भी मर नहीं सकता
मुझे कोई भी
जंगलों में बेदखल नहीं कर सकता
उलगुलान।
उलगुलान।।
उलगुलान।।।

हरि राम मीणा की कविताएं आदिवासी जीवन-दर्शन, इतिहास आदि परंपराओं का सच्चा आईना है। आदिवासी जीवन की विविध गतिविधियों की अभिव्यक्ति वे सहजता से कर पाए हैं। बिरसा मुंडा, शिबु सोरेन का संघर्ष किसी परिचय का मोहताज नहीं, जय पाल सिंह मुंडा का कार्य आदिवासी समाज को बड़ी देन है। केदार प्रसाद मीणा की पुस्तक समाज, साहित्य और राजनीति इस दृष्टि से महत्वपूर्ण पुस्तक साबित होती है। आदिवासी समाज के लिए संघर्षरत शिबु सोरेन का जीवन-दर्शन इसके केंद्र में है-'शिबु सोरेन ऐसा व्यक्तित्व है कि उस पर एक राय बन ही नहीं सकती है। कम से कम ऐसे दौर में तो बिल्कुल भी नहीं जब गरीब आदिवासी खुद अपने कलाचारिक मूल्यों भाषा और संघर्ष पर गर्व न करके किसी तरह अपने जीवन को बचाने में लगा हो, लगातार विस्थापित हो रहा हो और कुछ संपन्न समुदाय के अमीर व पढ़े-लिखे आदिवासी केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे हों, खुद आदिवासियों के संसाधन और उनकी महिलाओं की अस्मत लूटकर उन्हीं के हितैषी बने घूम रहे हों।' आदिवासी समाज के विकास की गति को आगे बढ़ाने में ऐसा साहित्य मील का पत्थर साबित हो सकता है। रमणिका गुप्ता ने भी इस संबंध में अपनी चिंता व्यक्त की है। वे लिखती हैं-'*आजादी के बाद भारतीय शासकों ने जंगल को एक मुनाफे की वस्तु बना दिया और सरकार अधिकारियों नेताओं, ठेकेदारों ने मिलकर*

बर्बरतापूर्वक उसे बर्बाद किया। ठेकेदारों द्वारा जंगलों की निर्मम कटाई की प्रतिक्रिया स्वरूप ही उत्तराखंड में विषकों आंदोलन चला। बिहार-झारखंड में के जंगल काटकर सांगवान और सफेदे (युकेलिप्टिस) के जंगल लगाने का जबरदस्त विरोध हुआ क्योंकि मिश्रित जंगल आदिवासी को रोजगार, पानी और वर्षा देता है।'[14] आदिवासी पानी के स्त्रोतों के साथ-साथ जमीन को कटाव से भी बचाता है। युकेलिप्टिस (सफेदे) के जंगल पानी के स्रोतों को समाप्त कर देते हैं। आदिवासी हर तरफ से जंगल और पहाड़ की रक्षा करता है। फिर बड़े करोड़पति की राजनीति का शिकार होकर जेल चला जाता है। आवश्यकता है आदिवासियों को इस सबसे बचाने की, उन्हें शिक्षित करने की, जागरूक करने की जिससे वे सम्मान का जीवन जी सकें। इन्हीं सब समस्याओं के परिणामस्वरूप आदिवासियों ने देश के विभिन्न भागों में अनेक अभियान चलाए। इनमें से अधिकांश आंदोलन विस्थापन या भूमि अधिग्रहण, साहूकारों एवं जमींदारों द्वारा कानूनों का अपने फायदे के लिए दुरुपयोग करने से उत्पन्न असंतोष में पैदा हुए जिस भूमि पर आदिवासियों का ही कब्जा था वह धीरे-धीरे अन्य लोगों के हाथ में चली गई। साहूकारों व जमींदारों द्वारा इनका शोषण किया जाने लगा। सीधे-सादे आदिवासी गैर-आदिवासी समुदाय की कठपुतली बन गए। सरकार के द्वारा कानून तो बनाए गए किंतु इनका उल्लंघन करने पर कठोर प्रशासनिक नियमों का अभाव ही रहा।

।।ई पत्रिका पढ़ना, आसान भी है और सुविधाजनक भी।।

रमणिका गुप्ता ने झारखंड के आदिवासियों के संघर्ष के संबंध में लिखा है-'झारखण्ड के ग्रामीण गरीब जिनमें अधिकतर आदिवासी एवं दलित हैं, बड़े पैमाने पर अपनी आजीविका, मजदूरी से अर्जित करते हैं। वे बधुआ मजदूरी करते हैं। उन्हें न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिली। छोटे किसान भी मजदूरी करते हैं। यहां पर कृषि के पास रोज़गार प्रदान करने की क्षमता बहुत कम है। सरकारी योजनाओं में कुछ काम इन्हें मिल जाता है लेकिन भ्रष्टाचार की वजह से वास्तव में योजना में 'आकलित श्रम दिवस' से बहुत कम रोजगार गरीबों को मिलता है। ऐसे लोगों को रोजी की तलाश में बड़े पैमाने पर पलायन करना पड़ता है।[15] यहीं से इस समुदाय का शोषण शुरू होता है। ये लोग रोजी-रोटी की तलाश में भटकते हैं, शिक्षा से वंचित हो जाते हैं।

समकालीन आदिवासी कविताओं में आदिवासियों के इसी दर्द को आवाज़ दी गई है। वास्तव में आदिवासी साहित्य सृजनात्मक की प्रतिध्वनि है। अपने कलाचार, भाषा और अस्मिता के बचाव के लिए किया गया सार्थक प्रयास है, जिसमें विद्रोह नहीं बेचैनी है, क्रोध नहीं अफसोस है। मिथक और यथार्थ के बीच की मजबूत कड़ी है। इस लेखन में शत-प्रतिशत मौलिकता है। अपनी भाषा और कलाचार के संरक्षण के प्रति कटिबद्ध पहल है। आदिवासी साहित्य को विश्व पटल पर अलग पहचान दिलाने के प्रयास विभिन्न स्तरों पर हो रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. आदिवासी चिंतन की भूमिका, गंगा सहाय मीणा, पृ. 42
2. आदिवासी चिन्तन की भूमिका, गंगा सहाय मीणा, पृ. 42
3. आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन, वंदना टेटे पृ. 9
4. केदार प्रसाद मीणा का लेख 'सृजन की कसौटी', जनसत्ता 10 मार्च 2013
5. केदार प्रसाद मीणा का लेख 'सृजन की कसौटी', जनसत्ता 10 मार्च 2013
6. रमेश चन्द मीणा 'विकास का रुख' लेख, जनसत्ता श्वपन. 17
7. लोकप्रिय आदिवासी कविताएं, पृ. 50
8. कलम से तीर होने दो, पृ. 149
9. लोकप्रिय आदिवासी कविताएं, पृ. 172
10.नन्हें सपनों का सुख, पृ. 22
11. आदिवास समाज, साहित्य और राजनीति, भूमिका, केदार प्रसाद मीणा
12. आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति, भूमिका, केदार प्रसाद मीणा
13. आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति, भूमिका, केदार प्रसाद मीणा
14. आदिवासी विकास से विस्थापन, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 12
15. आदिवासी विकास से विस्थापन, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 127

डिजिटल पढ़ना-लिखना आज की जरूरत है, जो सस्ता, सरल व सुगम है तथा यह त्वरित गति से प्रेषित होता है।

सीधा संवाद

दलित मुक्ति दर्शन
समस्याएं और संभावनाएं

डॉ. सर्वेश कुमार मौर्य

जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय से एम.फिल. करते हुए आपने 'यथार्थवाद और दलित साहित्य चिंतन' में शोध लिखा। आपने पीएच. डी. की उपाधि हेतु 'अमेरिकी ब्लैक साहित्य और हिंदी दलित साहित्य: तुलनात्मक अध्ययन' पर शोध कार्यकिया।

हिंदी दलित एकांकी संचयन, दलित नाटक की सैद्धांतिकी, दलित नाटक की आलोचना, दलित लोक नाटक, साहित्य और दलित दृष्टि (संपादित), दलित मुक्ति दर्शन, दलित साहित्य चिंतन, दलित साहित्य विमर्श (सह-संपादन) का कार्य किया। आप एनसीईआरटी में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। संपर्क : 9999508476

मुक्ति की बात करें तो भारतीय दार्शनिक परम्परा में मुक्ति के तीन विशेष संदर्भ प्रचलित हैं- पहला धार्मिक-आध्यात्मिक मुक्ति, दूसरा सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति और तीसरा भौतिक-आर्थिक मुक्ति। भारतीय दर्शन में धार्मिक-आध्यात्मिक मुक्ति से अर्थ है- जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति पाना अर्थात मोक्ष पाना। इस धारणा में यह माना जाता है कि मनुष्य का जन्म मनुष्य के रूप में इसीलिए हुआ है कि वह अच्छे कर्म करे और अच्छे कर्म करने के बाद जिस परमसत्ता का वह अंश है उससे जाकर मिल जाए अर्थात अंश और अंशी का मिलन ही अंततः धार्मिक-आध्यात्मिक मुक्ति है। हमारे भारतीय धर्मशास्त्रों में इसके बारे में विस्तार से बताया समझाया गया है और यह कहा गया है कि जीव अज्ञान के कारण ही बार-बार जन्म लेता और मरता है। इस जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाने का नाम ही मोक्ष है। शास्त्रकारों ने जीवन के चार उद्देश्य बताएं हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें से मोक्ष को परम अभीष्ट अथवा परम पुरूषार्थ बताया गया है। मोक्ष की प्राप्ति का उपाय आत्मतत्व या ब्रह्मतत्व का साक्षात् करना बताया गया है। न्याय दर्शन के अनुसार दु:ख का आत्यंतिक नाश ही मुक्ति या मोक्ष है। सांख्य दर्शन के मत से तीनों प्रकार के तापों का समूल नाश ही मुक्ति या मोक्ष है। वेदान्त दर्शन में पूर्ण आत्मज्ञान द्वारा माया संबंध से रहित होकर अपने शुद्ध ब्रह्म-स्वरूप का बोध प्राप्त करना मोक्ष है। कुल मिलाकर यह है कि सब प्रकार के सुख दु:ख और मोह आदि का छूट जाना ही मोक्ष है। ऐसा बताया गया है कि मोक्ष की कल्पना स्वर्ग-नरक आदि की कल्पना से आगे की कल्पना है। संभवतः यह स्वर्ग की कल्पना के मुकाबले मोक्ष की कल्पना विशिष्ट है। स्वर्गलोक की कल्पना में यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने किए हुए पुण्य वा शुभ कर्म का फल भोगने के बाद फिर इस संसार में

भारतीय दर्शन में सामाजिक-सांस्कृतिक शोषण के खात्में की बातें की जाती है। कई बार सामाजिक सांस्कृतिक शोषण को दया, याचना और तर्कों से खत्म करने की कोशिश होती है। कुल मिलाकर जो सामाजिक-सांस्कृतिक बंधन है उन्हें काटना, तोड़ना ही इस दर्शन का परम उद्देश्य रहता है भले ही वह जमीनी न हो। कुल मिलाकर सुध ारवाद ही इस दर्शन का मूल बिंदु है।

आकर जन्म ले; इससे उसे फिर अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ेंगे, किंतु मोक्ष की कल्पना में यह बात नहीं है। मोक्ष मिल जाने पर जीव सदा के लिये सब प्रकार के बंधनों और कष्टों आदि से मुक्त हो जाता है। भारतीय दर्शन में नश्वरता को दु:ख का कारण माना गया है। संसार आवागमन, जन्म-मरण और नश्वरता का केंद्र बताया गया है। इस अविद्याकृत प्रपंच से मुक्ति पाना ही अंतत: मोक्ष है। प्राय: सभी दार्शनिक प्रणालियों ने संसार के दु:खमय स्वभाव को स्वीकार किया है और इससे मुक्त होने के लिये उपासना या भक्तिमय कर्म मार्ग व ज्ञानमार्ग का रास्ता बताया है। मोक्ष इस तरह के जीवन की अंतिम परिणति है। इसे पार-पार्थिक (क्रॉस बॉर्डर) मूल्य मानकर जीवन के परम उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया है। कुल मिलाकर यहां सभी प्रश्नों का समाधान मोक्ष में देखा गया है।

दूसरे किस्म की मुक्ति सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति है। भारतीय दर्शन में सामाजिक-सांस्कृतिक शोषण के खात्में की बातें की जाती है। कई बार सामाजिक सांस्कृतिक शोषण को दया, याचना और तर्कों से खत्म करने की कोशिश होती है। कुल मिलाकर जो सामाजिक-सांस्कृतिक बंधन है उन्हें काटना, तोड़ना ही इस दर्शन का परम उद्देश्य रहता है भले ही वह जमीनी न हो। कुल मिलाकर सुधार-वाद ही इस दर्शन का मूल बिंदु है। तीसरे किस्म की मुक्ति आर्थिक-भौतिक शोषण की है। इस दर्शन चिंतन में आर्थिक-भौतिक शोषण व दुखों से मुक्ति का एजेंडा प्रमुख है। इसमें भौतिक दुनिया में व्याप्त दुख-दर्द शोषण-उत्पीड़न से मुक्ति की बात की जाती है। प्रमुख रूप से साम्यवाद और उसका दर्शन इस किस्म की बातें करते हैं। साम्यवादी दर्शन में मुक्ति की परिकल्पना में संरचनात्मक स्तर पर एक समतामूलक वर्गविहीन समाज की स्थापना की बात की गयी है। यहां ऐसा माना जाता है कि ऐतिहासिक और आर्थिक वर्चस्व के प्रतिमान ध्वस्त कर उत्पादन के साधनों पर समूचे समाज का स्वामित्व होगा। अधिकार और कर्तव्य में आत्मार्पित (सरेंडर्ड) सामुदायिक सामंजस्य स्थापित होगा। स्वतंत्रता और समानता के सामाजिक राजनीतिक आदर्श एक दूसरे के पूरक सिद्ध होंगे। न्याय से कोई वंचित नहीं होगा और मानवता एक मात्र जाति होगी। श्रम की संस्कृति सर्वश्रेष्ठ और तकनीक का स्तर सर्वोच्च होगा। हालांकि इसकी सीमाओं संभावनाओं पर भी बहुत सारी गंभीर बातें हुई हैं।

दलित मुक्ति दर्शन की यदि बात की जाए तो दलित मुक्ति दर्शन इन तीनों तरह की मुक्ति का समाहारी दर्शन है। विद्वान लोग समाहारी दर्शन से अर्थ खिचड़ी दर्शन भी लगा सकते हैं। यह कुछ हद तक ऐसा है भी। यह इतना व्यापक व भीमकाय है कि अंधों का हाथी हो गया है। जिसको जो मिला वही उसने समझा या फिर इस संदर्भ में यह कहना ज्यादा सही होगा कि जिसने जो चाहा वही समझा समझाया। मतलब यह कि इस दर्शन में सिर्फ धार्मिक-आध्यात्मिक मुक्ति नहीं है, न सिर्फ सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति है और न ही सिर्फ भौतिक-आर्थिक मुक्ति है बल्कि यह तीनों तरह के शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति की बात करता हुआ दर्शन है। इस अर्थ में कहा जा सकता है कि भारत में मुक्ति दर्शन के संदर्भ में दलित मुक्ति दर्शन ने एक नई जमीन तोड़ी है और उन बातों को बहसतलब बनाया है। यहां ढेरों दार्शनिक चिंतक मिलेंगे जो अलग-अलग छोर पर खड़े हैं, जो कई बार एक-दूसरे के विरोधी भी प्रतीत होते हैं। यहां बुद्ध, कबीर और रैदास हैं, फुले, पेरियार, आंबेडकर और गांधी हैं तो मार्क्स, लेनिन और माओ भी हैं। कुल मिलाकर दलित मुक्ति दर्शन ने अपने आकार, प्रकार व प्रकृति में जो व्यापकता हासिल की

है संभवत: वही उसकी ताकत और कमजोरी दोनों है।

बुद्ध ने हिंदू सामाजिक वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था को नकारा था। एकाधिकारवाद, ब्राह्मणवाद की मुखालफत की थी तथा क्षमता की पहचान की लोकतांत्रिक व्यवस्था की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें ऊंच-नीच राजा-रंक, शोषक-शोषित, छूत-अछूत सभी विभाजनों का निषेध एवं मानवता का वाद महिमामंडित था। इसलिए मान्यता और नकार की प्रगतिशीलता के चलते आगे चलकर यह दर्शन राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर को आकर्षित करता है उनकी ही जीवन-दृष्टि का हिस्सा नहीं बनता बल्कि दलित मुक्ति का भी आधार दर्शन बन जाता है। डॉ. अंबेडकर ने बौद्ध धर्म (धम्म) को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए लिखा कि-'दुनिया का कोई भी अन्य धर्म इसकी तुलना नहीं कर सकता यदि विज्ञान को जानने-समझने वाले किसी आधुनिक व्यक्ति को कोई धर्म ग्रहण करना हो तो वह बुद्ध का धम्म ही हो सकता है'। यहां तक कि एंगेल्स ने भी बौद्धवाद की क्रांतिकारी सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका के संदर्भ में बेहद महत्वपूर्ण बातें कहीं। उन्होंने कहा कि-'महान ऐतिहासिक मोड़ों के साथ धार्मिक परिवर्तनों का आना केवल तीन विश्व धर्मों के साथ ही, जो अब तक जारी रहे हैं, सत्य सिद्ध हुआ है- बुद्ध धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म। आध्यात्मिक-धार्मिक शोषण की शुरुआत, भौतिक चीजों की लूट और आगे चलकर अतिरिक्त (सरप्लस) हड़पने की प्रणाली पर परदा डालने के लिए, उसको जस्टिफाई करने लिए और सत्ता को मजबूत करने लिए हुई। बौद्ध धम्म ने इसको समझा और उसका सैद्धांतिक तार्किक विरोध किया। तब के समय में यह विरोध संभवत: धार्मिक आईने में ही हो सकता था। इसलिए बुद्ध बौद्ध-धम्म (परंपरित अर्थों में धर्म नहीं) की परिकल्पना करते हैं। कुल मिलाकर यह प्रतिरोधात्मक रूप में सामने आया और इसने दलित मुक्ति दर्शन की नींव रखी।

बौद्ध दर्शन के बाद मध्यकाल में दलित मुक्ति दर्शन के विकास विस्तार के संदर्भ में कबीर, रैदास, नानक आदि संतों का नाम भी लिया जाना चाहिए; जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों; बुराइयों और दुनियावी शोषण के खिलाफ बेहद गंभीरता से आवाज उठाई। ऐसे समय में जब बोलना, विरोध करना आसान नहीं रहा होगा उस समय भी कबीर आदि संत जिस भाषा भाव भंगिमा में अपनी बातें पुरजोर तरीके से रखते हैं, वह सामान्य बात नहीं है। दरअसल यह समझा जाना चाहिए कि नगरों के निर्माण की प्रक्रिया में निचली जातियों के उभार ने उनके पलने बढ़ने मजबूत होने में मदद की और संतो को वह ताकत दी जिसका प्रस्फुटन कबीर आदि संतों की वाणी के रूप में हुआ। कबीर उन लोगों में हैं जिन्होंने ज्ञान और सत्ता की खूंखार, जालिम परंपरा के खिलाफ आवाज उठाई थी। यह सही है कि कबीर और अन्य संतों का प्रतिरोध व चिंतन धार्मिक आवरण में ही सामने आया। लेकिन फिर भी यह परंपरित सत्ता पोषित अंध-धार्मिक परंपरा का विरोध प्रतिरोध था जो वैदिक काल से चली आ रही थी। जहां 'कागज की लेखी' पर जोर दिया जा रहा था, उसकी जगह पर कबीर 'आंखिन की देखी' की बात करते हैं और बहुत साफ शब्दों में वैचारिक अलगाव की भी बात करते हैं। वे साफ लहजे में कहते हैं-'मेरा तेरा मनवा, कैसे एक होय रे/ मैं कहता आंखिन की देखी, तू कहता कागज की लेखी/ मैं कहता सुरझावन/ हारी तू राख्या उरझाई रे।' उन्होंने सभी विभाजनों का अस्वीकार करते हुए कहा- एक बूंद ते सृष्टि

बौद्ध दर्शन के बाद मध्यकाल में दलित मुक्ति दर्शन के विकास विस्तार के संदर्भ में कबीर, रैदास, नानक आदि संतों का नाम भी लिया जाना चाहिए; जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों; बुराइयों और दुनियावी शोषण के खिलाफ बेहद गंभीरता से आवाज उठाई। ऐसे समय में जब बोलना, विरोध करना आसान नहीं रहा होगा उस समय भी रैदास, कबीर व नानक आदि संत जिस भाषा भाव भंगिमा में अपनी बातें पुरजोर तरीके से रखते हैं, वह सामान्य बात नहीं है।

रची है; मतलब यह कि इस किस्म के सामाजिक-सांस्कृतिक भेद का कोई जैविक-भौतिक आधार नहीं है इसलिए यह सब बकवास है।

इसी प्रतिरोध की परंपरा पर आधुनिक काल में सामाजिक सांस्कृतिक नवजागरण के अगुवा जोतिबा फुले का दर्शन विकसित हुआ। जोतिबा फुले ने खेतिहर समाज में शोषक शक्तियों की पहचान करते हुए दलित मुक्ति दर्शन को आगे बढ़ाया और मजबूती दी। अपने दर्शन-चिंतन में जोतिबा फुले शोषितों की वैश्विक एकता की बात भी करते हैं और अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी' को अमेरिकी नस्लवाद के शिकार; उसका पुरजोर विरोध करते हुए; लोगों को समर्पित करते हैं। मतलब यह किजोतिबा फुले नस्लवाद और जातिवाद को मानवता के लिए अहितकर मानते हैं और दोनों के खिलाफ संयुक्त प्रतिरोध का रोडमैप बनाते हैं। यहां नोट करने वाली बात यह भी है कि अपने पुरखों की तरह वे इस संदर्भ में जागरण व चेतना की भूमिका स्वीकार करते हैं तथा इसमें आधुनिक शिक्षा की महत्वूर्ण भूमिका देखते हैं इसीलिए इस दिशा में गंभीरता से काम भी करते हैं।

इसी जमीन पर डॉ। अंबेडकर का दर्शन चिंतन विकसित व पुष्पित-पल्लवित हुआ है। हालांकि डॉ. आंबेडकर भारत के ओवररेटेड बुद्धिजीवी हैं जिनका जितना किया हुआ है उससे ज्यादा सेलिब्रेट किया जाता है। संभवत: वे और उनका दर्शन दलित मध्यवर्गीय मानस को ही

अपने दर्शन-चिंतन में जोतिबा फुले शोषितों की वैश्विक एकता की बात भी करते हैं और अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी' को अमेरिकी नस्लवाद के शिकार; उसका पुरजोर विरोध करते हुए; लोगों को समर्पित करते हैं।

नहीं, पूंजीवादी लोकतांत्रिक सत्ता-व्यवस्था को भी खूब सूट करते हैं। उनसे अब शायद ही किसी को इतनी दिक्कत हो कि उन्हें त्याज्य समझे। उनकी खूबी यही है कि वे सर्वग्राह्य हैं; अक्रॉस द इंटेलेक्चुअल बाइनरी सेलिब्रेटेड हैं। इसका कारण संभवत: यही दार्शनिक इंटीग्रेशन जान पड़ता है जिसमें उन्होंने आध्यात्मिक-धार्मिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और भौतिक-आर्थिक तीनों तरह के शोषण से मुक्ति की बातें की हैं। उनके दर्शन में तीनों का समाहार या इंटीग्रेशन मिलता है। आध्यात्मिक-धार्मिक मुक्ति के संदर्भ में देखें तो वे बौद्ध धर्म को अपनाते हैं, उसकी नवीन व्याख्या करते हैं, 'बुद्धा एंड हिस धम्मा' नाम की किताब लिखते हैं। यहां तक की बौद्ध धर्म को व्यवहारिक और आधुनिक बनाने की कोशिश करते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति केसंदर्भ में देखें तो वे सामाजिक-सांस्कृतिक शोषण की जड़ जाति-प्रथा के समूल नाश की बात करते हैं और जाति प्रथा उन्मूलन का दर्शन देते हैं, 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' लिखते हैं। और भौतिक आर्थिक संकटों से मुक्ति के लिए भारतीय समाजवादी राज्य की परि-कल्पना वाला आर्थिक दर्शन गढ़ते हैं। अपने प्रसिद्ध लेख- 'राज्य और अल्पसंख्यक' में उसकी अवधारणा सामने रखते हैं। इस तरह यदि विकासक्रम में देखा जाए तो डॉ. आंबेडकर के यहां आध्यात्मिक-धार्मिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और भौतिक-आर्थिक तीनों किस्म का मुक्ति चिंतन समाहारी रूप में मिलता है। यह सही है कि वे रैडिकल चिंतक बिल्कुल नहीं हैं बल्कि जीवन व्यवहार में वे गांधी के अहिंसावादी सत्याग्रही और सिद्धांतों में जॉन डिवी के व्यवहारवादी हैं। फिर भी सच यही है कि आज की तारीख में डॉ. आंबेडकर का दर्शन दलित मुक्ति दर्शन का सिंहद्वार है।

यह सही है कि उत्तर-आंबेडकर काल में नई तब्दीलियां आई हैं, संकट बढ़ा है, सत्ता-व्यवस्था और क्रूर हुई है। बदले हुए समय और परिस्थितियों के अनुसार दलित मुक्ति दर्शन को अपने आप को बदलने और पुष्ट करने की जरूरत बढ़ गयी है। नई आर्थिक उदारवादी नीतियों, बढ़ते बिगड़ते सांप्रदायिक माहौल व दक्षिणपंथी राजनीति के लगातार मजबूत होते जाने, ने दलितों समेत अन्य तबकों का जीवन बदतर कर दिया है, नए किस्म के शोषण उत्पीड़न को जन्म और बढ़ावा दिया है, इसीलिए दलित मुक्ति दर्शन की परम्परित भूमि पर भविष्य के दलित मुक्ति चिंतन दर्शन का खाका गढ़ना होगा; उसकी सीमाओं को समझना होगा और संभावनाओं की तलाश करनी होगी।

सीधा संवाद

भारत में कुल परंपरा

उत्पत्ति, उद्भव एवं विकास

राजेंद्र बाबू ढोके

शिक्षा : एम.ए.(भूगोल)

शिक्षण संस्था: जटाशंकर त्रिवेदी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय बालाघाट (म.प्र.)

संप्रति : ब्लाक पंचायत आफिसर पद से सेवानिवृत्त।

पुस्तक :

(1) गोण्डवाना लैण्ड का मानव गोण्ड (2007), (2) सामाजिक न्याय के नियंता डॉ. आंबेडकर (2010) (3) हम भारत के लोग -2019 (4)जम्बूद्वीप में बद्धोदय (2021) व पत्र-पत्रिकाओं में शोध पत्र प्रकाशित।

संपर्क :

भारत के प्राचीन कुल, कुल चिह्न और उस सभ्यता व संस्कृति की देन है, जिसने मानव सभ्यता के विकास के चारों चरण पूरे कर लिये थे। इसकी पुष्टि सन् 1921-22 में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में उत्खनित पुरावशेषों से होती है। जिसे उत्खनन के आधार पर सिंधुघाटी सभ्यता की संज्ञा दी गई है। उसके निर्माता कौन थे? इस संबंध में भले ही विद्वानों से मत-मतांतर हो किंतु नाग-असुर ही सिंधुघाटी सभ्यता के निर्माता प्रमाणित होते है। यद्यपि बाद के विद्वानों ने 'आर्य-पूर्व भारतीय सभ्यता' भी कहा है। अत: उसे 'नागासुर सभ्यता' की संज्ञा दी जाना सार्थक प्रतीत होता है। जिसमे 'नाग-लिपि' (पाण्डुलिपि) का आविष्कार हुआ।

नागासुर सभ्यता व संस्कृति में ही 'कुलचिह्न समाज रचना' विकसित हुई। जिसमें जीव-जंतु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और भौतिक वस्तुओं को पहचान चिह्न के रूप में प्रयुक्त किया गया था। उसी से नागपूजा, पशु-पूजा और वृक्ष पूजा का प्रादुर्भाव हुआ। तब न तो जातियां थी और न ही जाति-भेद था। आर्यजनों ने कुलचिह्न समाज रचना के समानांतर वर्णगत समाज-रचना विकसित की और ऋषि गोत्र की श्रेष्ठता का महिमामंडन किया। जिसे वैदिक सभ्यता व संस्कृति कहते हैं। उससे कुल चिह्नधारको में ही परिवार व परिवार समूह आकर्षित हुए और ऋषि-गोत्र अपनाया फलस्वरूप कुलचिह्न धारकों में ही सर्वप्रथम गोत्र-भेद पैदा हुआ और आगे चलकर जाति-भेद का रूप धारण कर लिया। आर्यजनों ने संपूर्ण उत्तरी भारत की भूमि विजित कर उसे 'आर्यावर्त' और उसके दक्षिण की भूमि को 'दक्षिणा पथ' की संज्ञा दी थी न कि भारत। तब प्रश्न उठता है कि भारत अर्थात इंडिया नाम कैसे पड़ा इसका मूल बीज इन्दुनाग अथवा भारनाग में दिखाई देता है।

प्राचीन कुल

विद्वानों ने प्राचीन भारत का इतिहास ईसापूर्व छठी सदी से आरंभ

किया है। इसके पूर्व के इतिहास की जानकारी वैदिक काल (ईसापूर्व 1500 से 600 ई.पू.) में मिलती है। इसी काल में आर्यजनों ने जिस सभ्यता का विकास किया, उसे वैदिक–सभ्यता कहा गया है। इसके पूर्व की विकसिक सभ्यता को सिंधुघाटी सभ्यता कहते हुए उसे 3200 ईसापूर्व की विकसित सभ्यता निरूपित किया है। वैदिक सभ्यता का मुख्य अभिलेख ऋग्वेद माना गया है। जिसमें नाग, दास, दस्यु, दैत्य, दानव, कुयव, असुर, राक्षस इत्यादि के संहार सहित उनके अधि वासों और दुर्गो के विध्वंस का उल्लेख किया गया है।[1]

यदि वे नाग–असुर आदि मानवों से भिन्न कोई और थे तो उनका संहार क्यों किया गया? इसी प्रश्न के उत्तर खोजने पर भारत के प्राचीन कुलों के कई राज खुलते हैं। डॉ. आंबेडकर अपने शोध–प्रबन्ध में कहते है–दक्षिण के द्रविड़ और उत्तर के असुर अथवा नाग एक ही परम्परा के लोग है। ...तमिल या द्रविड़ भाषा आर्यों के आगमन के पूर्व समस्त भारत में बोली जाती थी। ...नाग उनका जातिगत–संस्कृतिगत नाम है और द्रविड़ भाषागत[2] स्पष्ट है नाग असुर आदि मानव ही थे। नाग असुर आदि मानव ही थे नाग–आसुर नामधारी कुल आज भी पाये जाते हैं।

(1) **नागः** संभवतः पहले–पहल फणधारी नाग सर्प परिवार और परिवारों के समूह की पहचान स्वरूप प्रतीकात्मक चिह्न के रूप में प्रयुक्त हुआ। उससे 'नाम' एक पहचान बन गई। कालांतर में व्यवहारिक कठिनाइयां उत्पन्न होने पर नागों के विविध नाम रखे गये। जैसा कि इतिहासकार श्री अवंति प्रसाद मरमट द्वारा 3 हज़ार नागों की सूची तैयार की गई है। संभवतः नागों के उतने ही कुल रहे होंगे।[3]

डॉ. आंबेडकर अपने शोध प्रबंध में कहते हैं–'नाग कौन थे? निस्संदेह वे अनार्य थे। ऋग्वेद में नागों का नाम आने से स्पष्ट है कि नाग एक बहुत ही प्राचीन पुरुष थे, स्मरणीय है कि नाग न तो आदिवासी ही थे और न असभ्य ही। इतिहासज्ञ डॉ. नवल वियोगी महोदय द्वारा डॉ. सी. एफ. ओल्ढम को उद्धृत करते हुए सूचित किया गया है कि मूल रूप में नाग राक्षस (Demons) नहीं थे बल्कि मानव थे, जो अपनी उत्पत्ति सूर्य से बताते थे। जिनका अलअथ वाटोटिम (Totem) फणधारी नाग था।[5] सोर, सौर, सौंर इत्यादि सूर्य के रूप है। यह आज भी जन–जाति में मिलते हैं और जातियों में सूर्यवंशी, सूरया, सुरेया, सुरे इत्यादि कुलनाम पाये जाते है।

संभवतः नागदास के 'दास' से 'दास' और 'दासु' कुलों के नाम पड़े। 'दासु' शब्द संस्कृत में आकर 'दस्यु' हो गया। दास, दासा, दासे, दासिया इत्यादि कुलों के नाम आज भी पाये जाते हैं। नागदनु के 'दनु' से दनुवा, दनुआ, दनुवे, दानवे, दानवेर, दानवेरा जैसे कुलों के नाम पड़े। दानव पर्यायवाची शब्द प्रतीत होता है। देतनाग के 'देत' से देत, देता, देते, देतिया, दत, दत्ता. दत्ते, दत्त्यु जैसे कुलो के नाम पड़े। दैत्य शब्द संस्कृत रूप हो सकता है। इस तरह दास, दस्यु, दैत्य, दानव आदि नागों के ही बोधक प्रतीत होते हैं।

वैदिक साहित्य में भले ही नागों को सर्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है किंतु उनके नामों का उल्लेख होने से प्राचीन कुल अथवा नाग अधिपति होने का संकेत मिलता है। उनमें वासुकी, तक्षक, पदमक, महापदम, कार्कोटक, एलापत, एरावत, कंबल, धनंजय, शंखपाल, शंखचूड, नौल, अर्बुद, कुलिक, महान तेजस्वी, परमघोरवृकोदर, वामन इत्यादि के नाम आए हैं।[6] यह कुलों के नामों में मिलते है।

ऐतिहासिक नाग शासकों में पहला नाम शिशुनाग (642 ई. पू.) का आता है जिसे शिशु नाक भी कहा जाता है। उसी कुल में बिम्बिसार, अजातशत्रु, महापद्मानंद, चन्द्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार, सम्राट अशोक और बृहद्रथ (185 ई. पू.) के नाम आते है।[7] सम्राट अशोक के राज्य काल (273 से 232 ई.पू.) में ही दक्षिण में आन्ध्रो या सातवाहनों की राजसत्ता स्थापित हो गई थी। संभवत 'अंधाई नाग' उनका प्रतीक चिह्न था। उसी से आंध और आंध्र कहलाये थे। आदि–आंध्र नामक जाति आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल और ओडिशा में अनुसूचित जातियों की सूची में दिखाई देती है। जो ब्रिटिश कालीन भारत सरकार द्वारा सन् 1935 में जारी की गई कथित अस्पृश्य जाति के रूप में मद्रास प्रांत में चिन्हित की थी।[9]

आंध नामक जन-जाति आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और छत्तीसगढ़ राज्य में पायी जाती है। इसके बाद भी कतिपय विद्वानों ने कथित शिलालेखों के आधार पर आंधी को ब्राह्मण बताया है। क्या जाति और जन-जातियां ब्राह्मण हो सकती है? बिल्कुल नहीं। उसी तरह कुछ विद्वानों का मानना है कि नागों का मूल स्थान भूमध्यसागर के पूर्वी भाग में स्थित असीरिया, फिलिस्तीन व इसराइल था। यही से नागपूजा का विस्तार हुआ।[10] भू-विज्ञान के अनुसार प्रायद्वीपीय भारत आदि गोण्डवानालैंड का ही अवशिष्ट भाग है। जिसका विस्तार भूमध्य सागर के पूर्वीतट से लेकर मनमार तक था।[11] गोंड नामक जनजाति उसका प्रतिनिधित्व आज भी करती है। अतः नागों को प्रवासी नहीं कहा जा सकता है। आज नाग कुन सम्पूर्ण भारत में पाये जाते हैं। इतिहासकार डॉ. के0 पी0 जायसवाल महोदय घ्द्वारा नाग शासकों की एक लंबी सूची जारी की गई है। उसमें विदेपुर (विदिशा) के शेषनाग (ईसापूर्व 110) से लेकर पदमावती के गणपति नाग (ईस्वी सन् 344) और मथुरा के नागसेन (ईस्वी सन् 344) के नाम मिलते हैं।[8]

(2) **असुर :** संभवतः नागों द्वारा ही अरसू (वट-वृक्ष) को प्रतीकात्मक चिह्न के रूप में प्रयुक्त किये जाने से 'असूर' कहलाये। यधपिपुरालिपि वाचक श्री पुरुषोत्तमश्रीराम सदार महोदय का मत है कि हड़प्पा-मोहनजोदड़ो में उत्खनन से प्राप्त मुद्रा क्रमांक 200 पर उत्कीर्ण लिपि व पत्ते की चित्राकृति से 'अस्सु' या 'अषु' अर्थात पीपल वृक्ष की पत्ती जान पड़ती है।[12] फिर भी अरसू (वट-वृक्ष) इसलिये अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि मैसूर राज्य (अब कर्नाटक) की जनजातियों में 'अरसू' एक गोत्र है, जिसका चिह्न वट-वृक्ष ही है तथा मेनसू गोत्र का चिह्न पीपल वृक्ष है। कन्नड भाषा में वट-वृक्ष को अरसु तथा पीपल वृक्ष को मेनसू कहते हैं।[13] वट-वृक्ष जिसे वड़, बड़ और बरगद भी कहते है, वह जन समुदायों के कुल-नामों में दृष्टिगोचर होते हैं, उसी तरह पीपल वृक्ष भी।

कुछ विद्वानों की यद्यपि यह धारणा है कि असुर ईरानी आर्य है, ईरानी आर्यो के धर्म-ग्रंथ 'अवेस्ता' के प्रधान देवता अहुरमज्द है, और 'अहुर' शब्द का रूपांतर 'असुर' है। जिसका उल्लेख ऋग्वेद में बार-बार किया गया है।14 विद्वानों की यह धारणा इसलिए युक्तियुक्त नहीं लगती कि ऋग्वेद में शम्बर को असुर और दैत्य दोनों से संबोधित किया गया है और फिर 'असुर' नामक जनजाति भारत के ही पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में चिन्हित की गई हैं। ओडिशा राज्य में तो 'असुर' जाति अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों की सूची में भी दिखाई देती है। इसके अलावा असुर, असुरा, असुरे, असुरिया, असुरकर कुलों के नाम पाए जाते हैं। उल्लेखनीय यह है कि दैत्य देतनाग का ही रूप हैं।

(3) **कुयव :** ऋग्वेद में वर्णित कुयव संभवतः कोया शब्द का संस्कृत रूप है। नागों में ही कोया अर्थात कोसा कृमि प्रतीकात्मक चिह्न के रूप में प्रयुक्त किया गया था। कोया नामक जनजाति आंध्रप्रदेश, ओडिशा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ राज्य में चिन्हित की गई है।

(4) **राक्षस :** राक्षस वस्तुतः राकस शब्द का संस्कृत रूप प्रतीत होता है, क्योंकि चंद्रमा के पर्यायवाची शब्दों में एक राकेस भी है और जन समुदायों में राकेस, राकेसा, राकेसी, राकेसे, राकेसिया जैसे कुलों के नाम मिलते हैं। संभवतः चन्द्रमा को राका भी कहा जाता था।

द्रविड़

द्रविड़ भाषाई शब्द है और वह नाग का पर्यायवाची भी है, संस्कृत में 'द्र' का अर्थ रेंगना या सरकना ही है, जो सर्प की एक विशेषता भी है। जन समुदायी में दरवडा, दरवडे, दरवडिया जैसे कुलनाम पाये जाते है। 'आदि-द्रविड' नामक जाति आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल राज्य की अनुसूचित जातियों की सूची में पायी जाती है। जो सन् 1935 में मद्रास प्रांत में कथित अस्पृश्य जातियों की सूची में सम्मिलित की गई थी।[15] इसके पूर्व जब सन् 1901 में जनगणना की गई थी, तब सर हर्बर्ट रिजने द्वारा किये गये भारत के मानव प्रजातीय वर्गीकरण में द्रविड़ियन प्रजाति के लोगों को भारत के मूलनिवासी बताया गया था।[16]

ब्रिगेडियर डॉ. सी. एफ ओल्ढम महोदय के अनुसार प्राचीन काल के 'चेर' अथवा 'सेर' (प्राचीन तमिल में

सरे) नाग का पर्यायवाची है। चेरमण्डेल, नागद्वीप या नाग प्रदेश से स्पष्ट तौर पर झलकता है कि दक्षिण के द्रविड़ों की उत्पत्ति असुरों से हुई।[17] स्पष्ट है नाग और असुर एक ही हैं वे सभी मानव ही थे

चिह्न

सामान्यत: परिवार और परिवारों के समूहों की पहचान के लिये अपनाये गये प्रतीकात्मक चिह्न ही कालान्तर में 'कुल' या 'गोत्र' चिह्न कहलाये हैं। उनमें पूर्णतया प्राकृतिक दृश्यमानों को ही सम्मिलित किया गया था। जीव-जंतु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और प्राकृतिक भौतिक वस्तुयें प्रतीक थे। उनके प्रति अपनत्व से आदरभाव और श्रद्धा ने अनेक विश्वासों को जन्म दिया। उसी से नागपूजा, पशु-पक्षी पूजा, वृक्ष पूजा और सूर्य-चांद पूजा का प्रादुर्भाव हुआ। वह विश्वास एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित हुआ और प्रतीकात्मक चिह्न रूढ़िगत हो गए। उन्हें 'कुल' या 'गोत्र' कहते हैं।

नि:संदेह नाग-पूजा का आरंभ नाग कुल चिह्न से हुआ। आज संपूर्ण देश में नागों की पूजा की जाती है। मध्य प्रदेश के सिवनी और बालाघाट जिलों में बाघ-देव, सांड-देव, और पिपरादेव आज भी पूजे जाते हैं। उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक नागों के अनेक मंदिर पाये जाते हैं। यथा वासुकी नाग, इन्दुनाग, मूलनाग, कलिहार नाग, देतनाग, बंदुकनाग, धारनीधर नाग, मातंगी नाग, रैनुक नाग, संतेरी नाग, मरुगन नाग, खंडोवा नाग, जोतिया नाग, वाल्मी (बाम्बी के रूप में) इत्यादि।18 संभवत: इन्दुनाग से ही इंदुर, इन्दुरा, इन्दुरी, इन्दुरे इन्दुरिया, इन्दुरकर कुलों के नाम पड़े। इन्दु से इन्डु और फिर इन्ड, इन्डा, इन्त्री, इन्डे, इन्डिया जैसे कुलों के नाम पड़े। उसी तरह भारनाग के भार से भार, भारा, भारी, भारे, भारिया, भारत, भारता, भारती, भारते, भारतिया जैसे कुल नाम पड़े। इंडिगा जनजाति कर्नाटक में तथा इंदिगा जनजाति तेलंगाना में पाई जाती है। उसी तरह भार जनजाति झारखंड में, भारती जनजाति गुजरात में और कर्नाटक में तथा भारिया जनजाति महाराष्ट्र, मध्यपदेश और छत्तीसगढ़ में पाई जाती है। इन्हीं में इंडिया और भारत का मूल बीज दिखाई देता है।

(1) **मूल सिद्धांत :** कुल या गोत्र का मूल सिद्धांत है, एक समान कुल या गोत्र के बाहर वैवाहिक संबंध स्थापित करना, क्योंकि एक-समान कुल या गोत्र के परिवारों को एक ही पूर्वज के वंशज माना गया था। अब सजातीय विवाह होते हैं, फिर भी बाह्य-गोत्री सिद्धान्त का पालन किया जाता है।

(2) **उत्पत्ति :** कुल अथवा गोत्र चिह्नों की उत्पत्ति के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि नाग-असुर द्वारा विकसित की गई सभ्यता व संस्कृति, जिसका विकास 3200 ई. पू. हो चुका था। उसने कुल चिह्न समाज रचना विकसित हो चुकी थी। जिसकी पुष्टि हड़प्पा मोहनजोदड़ों से उत्खनित मुद्राओं पर उत्कीर्ण बाघ, हाथी, सांड, भैंस, गेडा, हिरण और वृक्षों की पत्तियों की चित्राकृतियों से होती है। इनके अलावा बड़ी संख्या में नाग-मुद्रायें भी मिली हैं। यह सभी प्राचीन कुलचिह्नों के द्योतक है और पुरातात्विक प्रमाण-भी।

(3) **समाजशास्त्रीय व्याख्या :** कुलचिह्नों की समाज शास्त्रीय व्याख्या टोटम के रूप में तब प्रारंभ हुई, जब सर्वप्रथम सन् 1791 में अमेरिकी मानव-वैज्ञानिक जे. लॉग महोदय को मध्य अमेरिका की रेड इंडियन नामक जनजाति में चिह्न (प्रतीक) का बोध हुआ। संभवत: उन्होंने टोटम कहा था। उसके बाद अनेक विद्वानों ने जनजातियों में टोटम का अध्ययन करके परिभाषित किया है।

भारतीय समाजशास्त्री डॉ. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी ने सन् 1961 में टोटम को इस तरह परिभाषित किया है- जनजातीय समूह गोत्र का संबंध केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रखते हैं, बल्कि किसी भौतिक वस्तु, पशु, पेड़-पौधे तथा अन्य प्राकृतिक से अपना संबंध होने का दावा करते हैं और केवल संबंध ही नहीं अपितु उस संबंध के आधार पर अनेक अंधविश्वासों, श्रद्धा, भक्ति और आदर-भाव को जन्म देते है। इस प्रकार किसी भौतिक वस्तु या पशु-पक्षी या प्रकृति की अन्य कोई चीज जिसके साथ गोत्र अपना गूढ संबंध मानता है 'टोटम' कहलाता है और टोटम से संबंधित समस्त धारणाओं और संगठन को टोटमवाद कहते हैं।[21]

(4) **प्रकार :** भारत के जन समुदायों

में तीन प्रकार के कुल चिह्न पाये जाते हैं–

(क) मूल कुल चिह्न ऐसे कुल अथवा गोत्र जिनमें प्राचीन प्रतीक चिह्न दृष्टिगोचर होते है। यथा–बाघ, वाघ, नाग, नागा, सिंह, सिम्हा. सांड, नंदी, हिरण, पीपल, बड़, बरगद, चीच, सोर, सौर, चन्द्र इत्यादि।

(ख) युग्म कुलचिह्न ऐसे कुल अथवा गोत्र जिनमें एक से अधिक प्राचीन प्रतीक चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। यथा– नागसोरी (नाग और सूर्य), बाघसोरी (बाघ और सूर्य), नागेन्दु (नाग और सूर्य), नागचन्द्र (नाग और चन्द्रमा), डोंगरदिवे (पहाड़ और सूर्य), सोनपिपरे (सिंह और पीपल वृक्ष) इत्यादि।

(ग) विभक्त कुलचिह्न ऐसे कुल अथवा गोत्र जिनमें सम्पूर्ण जीवजंतु, पशु–पक्षी, या पेड़– पौधे न होकर, उनका कोई एक अंग दृष्टिगोचर होता है। यथा नागदत्त (नाग का दांत), इनवाती (हाथी का सूंड), इडपाची (महुआ पत्ता), जामुन पाने (जामुन का पत्ता), गजकाने (हाथी का कान), गजपोटे (हाथी का पेट), नागमुण्ड या नागमुण्डा (नाग का सिर), बेलपाते (बेल का पत्ता) इत्यादि।

कुलचिह्न क्या केवल जनजातियों में ही होते हैं?

समाज शास्त्रीय व्याख्या तथा जन–धारणा से इस प्रश्न का उत्तर 'हां' हो सकता है, किंतु अध्ययन से ज्ञात होता है कि समाज शास्त्रीय सिद्धांत भारत में लागू नहीं होता है, क्योंकि जिस कालखंड में कुल चिह्न समाज रचना हुई, उस कालखंड में जाति या जनजातीय पहचान पृथक से नहीं थी। उदाहरण के लिए नाग प्रतीक को ही ले लीजिए तो वह जनजाति और गैर जनजातियों मे समान रूप से पाया जाता है।

संथाल जनजाति के गोत्रों में बास्के एक गोत्र है उसका चिह्न (टोटम) नाग सांप ही है। मुंडा जनजाति के पांडु गोत्र का चिह्न भी नाग सांप ही है। भील–भिलाला जनजाति के लोग अपने को सरय पुत्र कहते हैं, सरय का अर्थ भी नाग यानी सर्प होता है। उनमें वास्के, वास्केल, वासला, वासले इत्यादि कुलों के नाम पाए जाते हैं। संभवतः उसके मूल में वासुकि नाग रहा हो। वही नाग जातियों और जनजातियों के नामों में दृष्टिगोचर होता है–

(क) जनजातीय समूह 'नागा' असम, नागालैण्ड, मणिपुर और अरुणाचल प्रदेश में, 'नागवंशी' महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में, नागेसिया ओडिशा में, 'नगासिया' महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में 'नगेसिया' उत्तीसगढ़ में और नागवंशी मुण्डा ओडिशा में पाये जाते हैं।

(ख) जातीय समूह (अन्य पिछड़ा वर्ग) 'नागासिया' असम में, 'नागर' पश्चिम बंगाल, झारखंड और ओडिशा में, 'नागरम' तमिलनाडू और पुड्डुचेरि में, 'नागरात्तर' पुडुचेरी में, 'नागरालु' तेलंगाना में, नागराम पुड्डुचेरि में 'नागावासहम' आन्धप्रदेश में, 'नागावाड्डिलु' आन्ध्रप्रदेश में और 'नागवंशी' असम में पाए जाते हैं।

(ग) अनुसूचित जातीय समूह में नागवंशी, नागदेव, नागदेवे, नागदेवोते, नागबुन्दे, नागराजु, नागरे, नागडे, नागले, नागोले, नागेश जैसे कुलों के नाम पाये जाते है। अतः कुल अथवा गोत्र चिह्नों को जनजातियों तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में डॉ. आंबेडकर का कथन बड़ा ही प्रासंगिक है। जिसमें वे कहते हैं–

भारत के लोग किसी समय दलों के हिसाब से संगठित थे और यद्यपि अब 'दलों' ने जातियों का रूप ले लिया है, तो दलो का संगठन अभी भी सुरक्षित है। हर दल टोलियों में बंटा हुआ था और टोलियां परिवारों के समूहों से बनी हुई थी। हर परिवार समूह का अपना एक चिह्न होता था, चाहे कोई जानदार वस्तु हो चाहे बेजान। जिनका परस्पर एक ही समान चिह्न होता था वह बाह्य विवाह आदेश के रूप में संगठित हो जाते थे। जिन्हें हम 'गोत्र' या 'कुल' कहते है।[22]

(अप) विश्व वितरण – विशेष उल्लेखनीय बात यह कि कुल–चिह्न समाज रचना उन्हीं भू–खंडों पर पायी जाती है, जिनका निर्माण गोण्डवानालैंड के विभाजन और प्रवाह से हुआ है। उनमें दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, सिरीलंका और प्रायद्वीपीय भारत शामिल है।

कुलनाम

प्राचीन कुल चिह्नों से ही कुलनाम पड़े है, किन्तु उद्विकास के कारण बहुसंख्यक कुलनामों में कुलचिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते है। विविध कुल

नामधारी परिवारों के समूह अलग-अलग जातीय तथा जनजातीय नामों से जाने जाते है। यद्यपि जातीय तथा जनजातीय नामों में भी प्राचीन कुलचिह्न झलकते है तथापि उन्हें भुला दिया गया और अपनी-अपनी कल्पना को दौड़ाकर कथाये और किवदंतियां गढ़ ली गई है। इसमें उल्लेखनीय बात यह है कि एक ही कुलनाम अलग-अलग जाति व जनजातियों में पाया जाने से यह सिद्ध होता है कि कुलनाम पहले पड़े और जातीय तथा जनजातीय समूह बाद में बने हैं।

(1) **उत्पति :** वस्तुतः कुलनामों की उत्पत्ति प्राचीन कुल चिह्नों से ही हुई है। यथा नाग, नागा, नागू, नागे, नागिया। बाघ, बाधा, बाधे, बाधिया बाधेसर । सांड, सांडा, सांडे, सांडिया, सांडव, सांडवा, सांडवे, सांडवेकर। पिपर, पिपरा, पिपरी, पिपरे, पिपरिया, पिपरेवार, पिपरेकर इत्यादि।

(2) **उद्विकास :** कुल चिह्नों से उत्पन्न मूल कुल नामों का उद्विकास होने से कुलचिह्न दृष्टिगोचर नहीं होता है यथा-

क. नागदेव के देव से देव, देवा, देवी, देवे, देवीकर, देवकर, देवेकर। देवर, देवरा, देवरी, देवरे, देवरिया, देवरकर इत्यादि।

ख. नागदवने के दवने से दवन, दवना, दवनी, दवनू, दवने, दवनिया, दवनेकर इत्यादि।

ग. नागबुन्दे के बुन्दे से बुन्देल, बुन्देला, बुन्देली, बुन्देले, बुन्देलिया, बुन्देलकर इत्यादि।

घ. नागराज के राज से राज, राजा, राजु, राजी, राजे, राजिया, राजकर, राजकरण, राजकरणे, राजपक्ष, राजपक्षे। राजपुर, राजपुरा, राजपुरी, राजपुरे, राजपुरिया, राजपुरकर। राजावत, राजावता, राजावती, राजावते, राजावतिया। राजुर, राजुरा, राजुरी, राजुरे. राजुरिया, राजुरकर। राजोर, राजोरा, राजोरी, राजोरिया, राजोरकर इत्यादि।

नागराम के राम से राम, रामा, रामी, रामे, रामो, रामया। रामार, रामारा, रामारी, रामारे, रामारिया इत्यादि कुलनाम विकसित हो

कुलनाम किसी जाति विशेष में न होकर अलग-अलग जातियों में पाये जाते हैं।

उदाहरण के लिये एक 'भगत' कुलनाम ऐसा है जो उन सभी वर्गों में पाया जाता है, जिन्हें संवैधानिक पहचान से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों के वर्ग कहते है। संभवतया भगत कुलनाम की पत्ति भग (अर्थात सूर्य) से हुई है। किन्तु इसे इस कारण भुला चुके है कि जाति और जन जातीयता की अय मान्यता हो गई।

जाति और जनजाति विभेद

प्राचीन कुल चिह्न समाज रचना में किसी प्रकार का विभेद नहीं होने पर भी ऐसा क्या हुआ कि जातीय तथा जनजातीय विभेद पैदा हो गए? इस विभेद का मुख्य कारण है प्राचीन कुलचिह्नधारी परिवार व परिवार समूहों में से ही परिवार व परिवार समूहों द्वारा वैदिक परंपरा के ऋषि गोत्र को अपनाया जाना। उनमें गोत्रीय श्रेष्ठता के मनोभाव उत्पन्न हो गये और अपनी अलग पंक्ति ना ली। कालांतर में उन्होंने ही प्रचारित किया कि कुल और गोत्र परस्पर भिन्न है। फलस्वरूप सर्वप्रथम गोत्र विभेद पैदा हुआ तत्पश्चात जातीय विभेद।

जातियां और जनजातियां क्या है? निस्संदेह प्राचीन कुलों के समूह है। जिनमें विविध कुलों के लोग पाये जाते है। उन समूहों के भीतर ही वैवाहिक संबंध स्थापित किये जाते हैं, जिसे 'सजातीय विवाह' कहते है। सजातीय विवाह प्रथा ने ही जाति-भेद को मजबूत किया है। एक समान कुलनामधारी परिवार भी जातीय बंधन के कारण एक-दूसरे को भिन्न मानते है। ऐसा क्यों हुआ? इसके दो कारण दृष्टिगोचर होते है-पहला प्राचीन कुलचिह्नधारियों में ही वैदिक परंपरा के ऋषि-गोत्र को धारण करना और दूसरा है सजातीय विवाह प्रथा को अपनाना।

डॉ. आंबेडकर अपने शोध प्रबंध में कहते है-सजातीय विवाह या आत्मकेंद्रित रहना ही 'हिंदू समाज का चलन था और क्योंकि इसकी शुरुआत ब्राह्मणों ने की थी इसलिए गैर-ब्राह्मणवर्गी अथवा जातियों ने भी बढ़-चढ़कर इसकी नकल की और वे सजातीय विवाह प्रथा को अपनाने लगे। यहां यह खरबूजे को देखकर खरबूजे की रंग बदलने वाली कहावत चरितार्थ होती है। इसने सभी उप-विभाजनो को प्रभावित किया। इस तरह जाति पथा का मार्ग प्रशस्त हुआ।

संदर्भ सूची

(1) संकेतांक विवरण पृष्ठ क्रमांक, प्राचीन भारत का इतिहास लेखक डॉ. मोहनलाल गुप्ता

(2) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मयखंड-14

(3) प्रकाशक डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार 15 जनपथ, नई दिल्ली सिन्धु घाटी सभ्यता का इतिहास लेखक पुरुषोत्तम श्रीराम सदार

(4) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड-14

(5] प्राचीन भारत के शासक नाग: उनकी उत्पत्ति और इतिहास (यथोपरि)

(6) प्राचीन भारत के शासक नाग: उनकी उत्पत्ति और इतिहास लेखक डॉ. नवल वियोगी

(7) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड-7

(8), प्राचीन भारत के शासक नाग: उनकी उत्पत्ति और इतिहास (यथोपरि)

(9) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड-14

(10) प्राचीन भारत के शासक नाग : उनकी उत्पत्ति और इतिहास (यथोपरि)

(11) भू-आकृति विज्ञान लेखक डॉ. सवीन्द्र सिंह

(12) सिन्धुघाटी सभ्यता का इतिहास (यथोपरि)

(13) समाजिक मानव शास्त्र की रूपरेखा लेखक डॉ. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी

(14] प्राचीन भारत का इतिहास (यथोपरि)

(15) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड-14

(16) मानव भूगोल लेखक डॉ. एस. डी. कौशिक

(17) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड-14

(18) प्राचीन भारत के शासक नाग: उनकी उत्पत्ति और इतिहास (यथोपरि)

(19) प्राचीन भारत का इतिहास (यथोपरि)

(20) प्राचीन भारत के शासक नाग: उनकी उत्पत्ति और इतिहास (यथोपरि)

(21) समाजिक मानव शास्त्र की रूपरेखा (यथोपरि)

(22) अछूत कौन और कैसे? लेखक: डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर

(23) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड-1

प्रोफेसर नन्दू राम

भारतीय समाजशास्त्र को समग्रता प्रदान करता एक समाजशास्त्री

प्रो. विवेक कुमार की फेसबुक वॉल से साभार

प्रो. विवेक कुमार

समाजशास्त्र विभाग, जेएनयू

भारतीय समाजशास्त्र में प्रो. नन्दू राम अगर अपनी लेखनी से भारत की एक-चौथाई जनता का समाजशास्त्रीय सच प्रकाशित एवं स्थापित नहीं करते तो भारतीय समाजशास्त्र कुछ वर्णो का ही समाजशास्त्र बनकर रह जाता।

अपने अदम्य साहस एवं ज्ञान की गहराई के आधार पर उन्होंने आई. आई. टी. (Indian Institute of Technology, Kanpur) एवं जेएनयू (Jawaharlal Nehru University, New Delhi) के छात्राओं/छात्रों का सामना किया। कल्पना कीजिये 1970 के दशक में जाति-अस्पृश्यता, आंम्बेडकर आदि पर विश्वविद्यालयों की कक्षाओं में एक विशिष्ट अस्मिता वाले शिक्षक का व्याख्यान कितना कठिन होता होगा जबकि आज भी यह आसान नहीं है। परंतु प्रो. नन्दू राम ने अत्यंत सौम्यता एवं दृढ़ता से उन सबका सामना किया।

इसीलिए उनकी कालजयी पुस्तक 'मोबाइल शेड्यूल कास्ट' की प्रस्तावना लिखते हुए प्रो. एस. सी. दुबे, नन्दू राम से पूछते है कि यद्यपि वे अनुसूचित जातियों के ऊपर होने वाले अत्याचारों और शोषण के खुद गवाह रहे है परंतु 'उनके लेखन में कोई क्रोध नहीं है यहां तक कि ज्यादा जुनून भी नहीं है। उनकी निष्पक्षता सराहनीय है, लेकिन मुझे आश्चर्य है कि उन्हें अपने विश्लेषण में नैतिक रूप से इतना तटस्थ' रहने की क्या आवश्यकता थी।

इतना ही नहीं, अगर प्रो. नन्दू राम अपने शोध से ज्ञान का उत्पादन नहीं करते तो भारतीय समाजशास्त्र में 'पर्सपेक्टिव फ्रॉम विलो', 'निचले पायदान का संदर्श या दृष्टिकोण' का भी उदय नहीं होता। सत्यता में उपरोक्त दृष्टिकोण से भारतीय संरचना एवं प्रक्रियाओं को समझे बगैर

शेष पृ.29

साक्षात्कार

आंबेडकरवादी साहित्य का भविष्य अन्य धारा के साहित्य से कहीं अधिक उज्ज्वल है

वरिष्ठ साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया

रत्नकुमार सांभरिया अंतर्राष्ट्रीय स्तर के साहित्यकार हैं। गुणवत्ता की दृष्टि से उनके साहित्य के अपने प्रतिमान हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानियां, नाटक, लघुकथाएं, पुस्तक समीक्षाएं और आलोचना लिखी हैं। उनका साहित्य विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल है तथा एक बडी संख्या में शोधार्थी उनके साहित्य पर शोध कार्य कर रहे हैं। उनको राजस्थान साहित्य अकादमी का 'सर्वोच्च मीरा पुरस्कार' प्राप्त हुआ है। 'बेगमपुरा:सभ्यता का आह्वान' द्विमासिक पत्रिका के लिए डॉ. अमित धर्मसिंह ने मा. रत्नकुमार सांभरिया का साक्षात्कार लिया है जिसके संपादित अंश यहां दिये जा रहे हैं।

अमित धर्मसिंह

जन्म : 18 जून 1986

शिक्षा : पीएच.डी-हिंदी, दिल्ली विश्वविद्यालय

पुस्तकें : काव्य संग्रह (1) 'आस-विश्वास', (2) 'हमारे गांव में हमारा क्या है' (3) 'कूड़ी के गुलाब'। **शोध आलेख**-साहित्य का वैचारिक शोधन **लेख व समीक्षाएं**-रचनाधर्मिता के विविध आयाम **संस्मरण व वैचारिकी**-खेल जो हमने खेले एवं दलित लेखक संघ की स्मारिका

संपर्क : 9310044324

ईमेल : amitdharmsingh@gmail.com

अमित धर्मसिंह : **आपने लिखने का क्षेत्र कथा साहित्य ही क्यों चुना, क्या इसकी कोई खास वजह रही, यह भी बताएं कि कहानी, लघुकथा, नाटक और उपन्यास जैसी जटिल विधाओं का सम्यक निर्वाह कैसे कर लेते हैं?**

सांभरिया : कहानी का परिदृश्य उज्ज्वल है। कहानी में कल और आज को समझने का वर्तमान होता है। जहां नाटक, कविता, महाकाव्य या खण्डकाव्य, डायरी या संस्मरण जैसी विधाओं को प्रकाशक प्रकाशित करने में हाथ खींचते नज़र आते हैं या फिर लेखक से पैसे लेकर छापते हैं। कोरोना काल की इन तीन भयावह लहरों के बाद तो स्थिति और चिंता-जनक होती गई है। बावजूद इसके कहानी या उपन्यास जैसी कथारसीय विधाओं के लिए यह संकट उतना नहीं गहराया। यदि कोई कथाकार छपास की अपनी भूख का शमन करने के लिए प्रकाशक से समझौता करे तो बात इतर है। साहित्यिक परिवेश में अगर कोई विधा अविचलित है तो वह कहानी ही है। कहानी अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता का जिस मुखरता से उद्‌घाटन करती है, वह उसकी खूबी में शुमार है। कहानी ही तो वह विधा है, जिसका वैचारिक पक्ष, कहें

अमित धर्मसिंह व रत्नकुमार सांभरिया

कि काल्पनिक सोच चाहे आकाशीय हो जाती हो, उसके कथानक की बुनावट के रेशे, पेड़ों की जड़ों की भांति जमीनी होते हैं। संवेदनाएं वाक्य में पूरती हैं, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी, 'उसने कहा था', मुंशी प्रेमचंद की 'ईदगाह', रेणु की 'मारे गये गुलफाम', जैनेन्द्र की 'पॉजेब', रांगेय राघव की 'गदल', राजेंद्र यादव की 'जहां लक्ष्मी क़ैद है', ज्ञानरंजन की 'फैंस के इधर-उधर', एडवोकेट भगवानदास की 'फसाद' कहानी को जिस प्रकार संवेदनाएं समेटे हैं वह उल्लेखनीय है। कहानी को एक ही बैठक में पढ़ने की जो ललक पाठक में होती है, कहानी का कथानक, कहानी के पात्र, कहानी का परिवेश और कहानी की भाषा-शैली उसकी आंखों में जिस प्रकार जी उठते हैं, वह कहानी के वजूद की जीवंतता है। निम्न वर्गों के जीवन की छटपटाहट को कहानियों में बखूबी बुना जा सकता है। इसके कतिपय उदाहरण मेरी 'फुलवा', 'खेत', 'चमरवा', 'चपड़ासन' आदि कहानियों में देखने को मिल जायेंगे।

साहित्यकार समाज में ही पैदा होता है और समाज में ही सांसें लेकर जीता है, उसकी वे सांसें समाज के रीति-रिवाजों और परंपराओं से जुड़तीं और उनमें से कुछ खोजती हैं। यह खोज कथानक चयन की खोज है। उसी कथानक को बुनते कहानी लिखना है, जिसमें उस समाज अथवा उस परिवेश का बिंब झलकता है। कहानी लिखने की कोई समयबद्धता नहीं होती है। कई बार एक कहानी तीन महीने में भी पूरी नहीं होती तो कई बार एक कहानी एक ही दिन में लिख ली जाती है, बतौर उदाहरण मेरी 'बूढ़ी' कहानी वागर्थ मई, 1999 के अंक में प्रकाशित हुई थी। वह कहानी मैंने टोंक में रहते हुए एक ही दिन में लिख ली थी। यह अलग बात है कि उस दिन मैं उसी कहानी को लिखने पर केंद्रित रहा। दूसरी बात, मेरी कहानी 'बिपर सूदर एक कीने' जिसे कथादेश अखिल भारतीय हिंदी कहानी प्रतियोगिता 2007 का प्रथम पुरस्कार, (प्रकाशन कथादेश, जनवरी 2008) प्राप्त हुआ, को मूर्त रूप देने में लगभग तीन महीने लग गए थे।

दलित साहित्य में कहानी और उपन्यास दो ऐसी महत्वपूर्ण विधाएं हैं, जिनके माध्यम से साहित्यकार पृष्ठभूमि और भावभूमि दोनों का निर्वाह बड़ी शिद्दत से कर सकता है। विचारणीय मुद्दा यह है कि दलित साहित्य में कहानियां तो लिखी गई हैं, लेकिन सलीके का कोई ऐसा उपन्यास सामने नहीं आया जो दलित साहित्य का प्रतिनिधि उपन्यास हो। दूसरी बात मैंने कहानी, लघुकथा, नाटक, उपन्यास चारों ही विधाओं में सृजन किया है। मेरे खाते 'आकार' नामक 54 शब्दों की लघुकथा से लेकर 424 पेज का 'सांप' उपन्यास भी है। रही बात यह कि इन चारों विधाओं पर लेखन में समन्वय बैठाना तात्त्विक विवेचन का गहनता से अध्ययन करना है। विधागत तात्त्विक विवेचन का ज्ञान नहीं होगा, वह विधा पूर्णता नहीं पा पाएगी। इसी तरह से इन चारों विधाओं के कथानकों का चयन भी अपनी दृष्टि से करना होता है। कथानक अछूते भी हों और शिल्पा-सौष्ठ की दृष्टि से उनको बुना भी गया हो।

अमित धर्मसिंह : **आप मूलतः हरियाणा से संबंध रखते हैं और काफी अरसे से राजस्थान निवासी हैं, इन दोनों राज्यों की अपनी-अपनी भाषाएं और लोक-बोलियां हैं। बावजूद इसके, हिंदी का इतना सटीक मुहावरा कैसे गढ़ लेते हो?**

सांभरिया : मैं 23 साल तक हरियाणा में रहा। हरियाणा के परिवेश बोली-भाषा, पहनावा और वहां के

रीति-रिवाजों से संलग्न रहा। उसके बाद मैं राजस्थान आ गया और राजस्थान में ही रच-बस गया। मुझे कहने में कोई उज्र नहीं है कि जहां हरियाणा ने जन्म दिया, वहीं राजस्थान ने मुझे रोजी-रोटी दी। जन्म और रोजी-रोटी दोनों का अपना-अपना महत्व है। यहां आकर मैं राजस्थानी परिवेश में रमता चला गया। यहां का भौगोलिक परिदृश्य और भाषा का माहौल मेरे साहित्य में रचता-बसता गया है। मेरी रचनाओं में प्रयुक्त मुहावरे और लोकोक्तियां तथा शब्दों का नवाचार राजस्थानी और हरियाणा दोनों भाषाओं का समन्वय है। भाषा-बोली उस समय मेरे सामने चुनौती बनकर खड़ी हो गई, जब मैं 'सांप' उपन्यास का सृजन कर रहा था। यह उपन्यास सपेरा-कालबेलिया, नट-मदारी, कुचबंदा, बहुरूपिया, पेरना, बाजीगर, कलंदर आदि दस-बारह जातियों की दुश्वारियों को लेकर लिखा गया है, जो लगभग साढ़े चार साल में पूरा हुआ। ये वे जनजातियां हैं, जो आज भी 'धरती बिछाती है, आकाश ओढ़ती है, अपने पसीने से नहा लेती हैं और भूख खाकर सो जाती है।' क्योंकि ये लोग खानाबदोश हैं। अत: उनकी बोलियां भी राजस्थान की बोलियों से इतर हैं। मैंने छह महीने तक इन्हीं जनजातियों के बीच रह कर इनके जीवन के त्रास का अध्ययन किया। उनके हवा-पानी से थोड़ा घुला-मिला। उनकी बोलियों का अल्पाज्ञान प्राप्त किया।

अमित धर्मसिंह : **आपका प्रथम उपन्यास 'सांप' काफी चर्चित रहा, उस पर राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च सम्मान मीरा पुरस्कार भी मिला, वह घुमंतुओं के जीवन पर आधारित था। हाल ही में, आपका दूसरा उपन्यास नटनी प्रकाशित हुआ है, वह भी घुमंतुओं से ही संबंधित है, घुमंतुओं को उपन्यास का विषय बनाने की कोई खास वजह?**

सांभरिया : 'सांप' उपन्यास में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह हरियाणवी, राजस्थानी और खानाबदोशी तीनों ही भाषा का समन्वय है। अगर इस उपन्यास में खानाबदोशी भाषा का ही प्रयोग हुआ होता तो यह उपन्यास आम पाठक का नहीं रह जाता। फक्र की बात यह है कि आज यह उपन्यास देश के दो विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल हुआ है तथा डॉ. रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं' और *''रत्नकुमार सांभरिया का 'सांप' उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन''* से पीएच.डी. शोध कार्य प्रारंभ हुआ है। मेरा दूसरा उपन्यास 'नटनी' भी इसी परिवेश का है। इन दोनों उपन्यासों के अतिरिक्त मेरी 15 कहानियां भी 'हाशिए का समाज' कथानकों पर सृजित हैं। सृजन में शिल्प-सौष्ठव ही लेखक की पहचान होता है। इसे आप सटीक मुहावरा भी कह सकते हैं। क्योंकि दलित साहित्यकारों के द्वारा दलित पृष्ठभूमि पर तो बहुत लिखा गया, लेकिन 'हाशिए का समाज' जो भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग है और वह अंग न केवल सामाजिक दृष्टि से ही बल्कि साहित्यिक क्षेत्र में भी उपेक्षित रहा। साहित्यकार होने के नाते मेरा ध्यान इन लोगों की दुश्वारियों की ओर गया और उनकी वे दुश्वारियां निर्वासन से पुनर्वास तक का साकार रूप है। हमें घुमन्तू लोगों के जीवन की ओर भी अपनी कलम को उन्मुख करना चाहिए।

अमित धर्मसिंह : **आपके जितने भी नाटक, कहानी, लघुकथाएं और उपन्यास के मुख्य पात्र हैं, वे सभी दबे, कुचले और वंचित समाज से आते हैं, किंतु वे शोषक समाज के पात्रों पर भारी पड़ते हैं, जबकि असल में ऐसा बहुत कम होता है, इसके बारे में आप क्या कहना चाहते हैं?**

सांभरिया : मेरे सृजन का स्वरूप बहुआयामी है। मूलत: मैं दलित चेतना का पक्षधर हूं। पात्र का रोना, गिड़-गिड़ाना, समझौता परस्ती, उत्पीड़न और अत्याचारों का झेलना मेरे सृजन का ध्येय नहीं है। भाग्य-

जीवन, जज्बा और जिजीविषा के फलस्वरूप मेरी कहानियों के पात्र ना हताश होते हैं, ना निराश होते हैं, ना थकते-हारते हैं, विषम परिस्थितियों का सामना करते मान-सम्मान, स्वा- भिमान और मर्यादा का जीवन जीते हैं।

भगवान, देवी-देवता, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, पितर पचवीर जैसी अलौकिक यूं कहें कि अंध-विश्वासी सोच से दलितों का पीछा छूटे और वे अपने सर्वांगीण विकास की ओर उन्मुख हों, आज दलितों को सहानुभूति की नहीं, सम्मान और समानता की दरकार है।

जीवन, जज्बा और जिजीविषा के फलस्वरूप मेरी कहानियों के पात्र ना हताश होते हैं, ना निराश होते हैं, ना थकते-हारते हैं, विषम परिस्थितियों का सामना करते मान-सम्मान, स्वा-भिमान और मर्यादा का जीवन जीते हैं। मेरा मानना है कि कहानी का पात्र जाति से चाहे कितना छोटा हो, उसकी प्रकृति पीपल के बीज जैसी होनी चाहिये। पीपल का एक छोटा सा बीज पत्थर को फाड़कर उग जाता है और अपना आकार लेता जाता है।

मैं कथानाक के चयन, पात्रों के नामकरण और भाषा शैली पर विशेष ध्यान दिया करता हूं। दलित लेखन को एक चुनौती के रूप में लेता हूं। क्योंकि दलित साहित्य श्रेष्ठता का नाम है। यहां गणना (Quantity) नहीं, गुणवत्ता (Quality) महत्त्वपूर्ण है। गुणवत्ता के बरअक्स ही आज मेरी कहानियां और नाटक देश भर के लगभग बीस विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं। लगभग तीस शोधार्थी मेरे साहित्य पर एम. फिल और पी-एच.डी. कर चुके हैं अथवा कर रहे हैं। जिस शख्स को एक-एक शब्द सीखने के लिए लाख-लाख पापड़ बेलने पड़े हों उसके सृजन को विश्वविद्यालयों में मान्यता मिली और शोध कार्य हो रहा है, साहित्य जगत में दलित साहित्य की इससे बड़ी उपलब्धि क्या हो सकती है?

'हाशिए का समाज' जो भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग है और वह अंग न केवल सामाजिक दृष्टि से ही बल्कि साहित्यिक क्षेत्र में भी उपेक्षित रहा। साहित्यकार होने के नाते मेरा ध्यान इन लोगों की दुश्वारियों की ओर गया और उनकी वे दुश्वारियां निर्वासन से पुनर्वास तक का साकार रूप है। हमें घुमन्तू लोगों के जीवन की ओर भी अपनी कलम को उन्मुख करना चाहिए।

अमित धर्मसिंह **: आप करीब आठ नाटक, चौवन कहानियां, डेढ़ सौ लघु कथाएं और दो वृहत उपन्यास रच चुके हैं। आपकी तरह दलित साहित्य में अपेक्षाकृत, कथा साहित्य बहुत कम आ रहा है, जितना आ रहा है, वह भी अधि-कतर स्तरीय नहीं, आप इसकी क्या वजह मानते हैं?**

सांभरिया : जैसा मैंने कहा है साहित्य में गणना के लिए गुणवत्ता की आवश्यकता होती है। मेरी 54 कहानियां हैं, लेकिन इन कहानियों में से एक भी कहानी दलित पत्रिका में नहीं छपी। जबकि सभी कहानियां अमेरिका से संपादित 'अन्यथा' पत्रिका से लेकर 'हंस', 'कथादेश', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'अक्षरा', 'वागर्थ' सहित देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। इसी प्रकार 'सांप' उपन्यास के 35 अध्यायों में 34 अध्याय विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छाया हुए। आठ में से तीन नाटक प्रकाशित हुए। जो साहित्य स्तरीय नहीं होगा, पाठक उसे पीछे धकेल देगा। आपका यह कहना समीचीन जान पड़ता है कि आज दलित साहित्य अपेक्षाकृत कम आ रहा है और जो प्रकाशित हो रहा है, वह चूका-चूका-सा नजर आ रहा है।

अमित धर्मसिंह **: भारत में मार्क्सवादी, जनवादी और दलित साहित्य का आपको क्या भविष्य दिखाई पड़ता है? आपको क्या लगता है कि इनमें से अभी कौन लंबा जाएगा और क्यों?**

सांभरिया : आप साहित्य को खानों में बांटना चाहें तो बांट सकते हैं। मार्क्सावादी साहित्य, प्रगतिशील साहित्य, जनवादी साहित्य और दलित साहित्य जो अब आंबेडकरवादी साहित्य के नाम से जाना जाने लगा है। इन सब की धारा प्रगतिकामी है। यानी साहित्य के माध्यम से सबके मन-मस्तिष्क का विकास। साहित्य लंबा जायेगा या वहीं ठहर जाएगा, इसका आक्कलन वक्त करेगा। मेरे

विचार से आंबेडकरवादी साहित्य का भविष्य अन्य धारा के साहित्य से कहीं अधिक उज्ज्वल है।

अमित धर्मसिंह : **इन दिनों दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य और ओबीसी साहित्य को मिलाकर बहुजन साहित्य बनाने की कवायद चल रही है, आपका इस बारे में क्या ख्याल है?**

सांभरिया : वैसे यह कोई बुरी बात नहीं है कि दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य और ओबीसी साहित्य को एकरूप कर 'बहुजन साहित्य' नाम दिया जा रहा है, लेकिन दलित, आदिवासी और ओबीसी इन सबकी मानसिकता पृथक-पृथक है। सोच का दायरा भी इतर है। अन्य पिछड़ा जाति के लोग आदिवासियों और दलितों से दूरी बना कर रहना चाहते हैं। आदिवासी भी आज तक दलितों में कहां मिला-जुला है। दलितों के प्रति आदिवासियों में भी जातिगत भेदभाव की भावना निहित है। जब भावनाएं अलग-अलग हैं, विचारों का प्रवाह पृथक-पृथक है, सोच-समझ का दायरा इतर है तो समूचा साहित्य एक कैसे हो पाएगा। बहुजन साहित्य समन्वय-वादी विचार है, समरसता का आदर्श है। लेकिन इसकी क्रियान्विति कहीं कठिन है, क्योंकि जातिगत भेदभाव होते हुए साहित्य धारा एक कैसे रह सकती है। प्राय: देखा गया है कि ओबीसी के लोग भी दलितों के उत्पीड़क हैं। अब आप ही बताएं कि शोषक और शोषित का साहित्य एक समान कैसे हो सकता है। हां, अगर

दमदार कथानक जेहन में आने के उपरांत ही मैं कहानी लिखने का मन बनाता हूं। मंथन करते मस्तिष्क में उसे परिपक्व होने देता हूं। परिपूर्ण प्रसव के बाद प्रसूता को निवृत्ति और प्राप्ति की जो सुखद अनुभूति होती है, परिपक्व रचना लिखने के बाद लेखक वैसे ही दोहरे संतोष का फल पाता है।

जाति भेदभाव को मिटाने का प्रयास तीनों करें तो साहित्य भी समुन्नत होगा।

अमित धर्मसिंह : **आपके नाम के साथ दलित साहित्यकार की अपेक्षा जनकथाकार बहुतायत प्रयोग होता है, आपकी नजर में इसकी कोई खास वजह?**

सांभरिया : इसका कारण यह है कि मेरा साहित्य उन लोगों के हृदय को भी स्पर्श कर रहा है, जो दलितों में भी दलित हैं। विशेषत: घुमंतू और जनजातियों का सामाजिक परिवेश मेरे साहित्य में समावेशित है। क्योंकि मेरा साहित्य जन की भावना से जुड़ा है, इसलिए साथी साहित्यकार मेरे नाम के साथ जनकथाकार का विशेषण लगाने लग गए हैं। दलित होने के नाते दलित साहित्यकार तो मैं हूं ही इसी रूप में मेरी पहचान भी है। साहित्यकार चाहे दलित हो या गैर दलित उसका सृजन 'के लिए' होना चाहिए न कि 'के ऊपर' यानी उसमें सहानुभूति की बजाय स्वानुभूत प्रतिपादित हो।

अमित धर्मसिंह : **अभी तक आपके लेखन पर कुल कितने शोध कार्य हो चुके हैं अथवा हो रहे हैं? आपके लेखन पर कितने पुरस्कार अथवा सम्मान आदि मिले हैं? क्या आप इन सबको लेकर पर्याप्त संतुष्ट हैं? भविष्य में और क्या रचने और हासिल करने की तमन्ना है?**

सांभरिया : अभी तक मेरे साहित्य पर लगभग 48 एफ.फिल और पी-एचडी ओ चुकी हैं अथवा हो रही हैं। देश के लगभग 42 विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में मेरी रचनाएं शामिल हैं। अकेली 'फुलवा' कहानी जो मेरी पहली कहानी है, 'हंस' पत्रिका के मई, 1997 के अंक में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी आज देश के 22 विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। रही बात पुरस्कारों की मुझे नवज्योति कथा सम्मान 'आखेट' कहानी पर वर्ष-1998, राष्ट्रीय सहारा कहानी प्रतियोगिता का पुरस्कार तत्कालीन उपराष्ट्रपति भैरोंसिंह शेखावत द्वारा 'चपड़ासन' कहानी पर वर्ष-2005, कथादेश अखिल भारतीय हिंदी कहानी प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार 'बिपर सूदर एक कीने' कहानी पर वर्ष-2007, राजस्थान पत्रिका का सृजनात्मक पुरस्कार-2008 'खेत' कहानी पर, हरियाणा साहित्य अकादमी का हरियाणा गौरव सम्मान-2014, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी संस्थान

आगरा का सुब्रह्मण्य भारती साहित्य पुरस्कार-2017, राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च मीरा पुरस्कार 2023 (सांप उपन्यास पर), माता रमाबाई सामाजिक उत्थान संस्थान रेवाडी, हरियाणा (सर्वश्रेष्ठ पुस्तक पुरस्कार सांप उपन्यास पर) प्राप्त हैं।

एक महत्त्वपूर्ण बात जो पूछी नहीं गई है, वह मेरी रचना प्रक्रिया के बारे में है। मैं कहानी लिखते वक्त पांच चरणों से गुजरता हूं। (1) कथानक चयन (2) लेखक (3) संपादक (4) आलोचक (5) पाठक।

(1) दमदार कथानक जेहन में आने के उपरांत ही मैं कहानी लिखने का मन बनाता हूं। मंथन करते मस्तिष्क में उसे परिपक्व होने देता हूं। परिपूर्ण प्रसव के बाद प्रसूता को निवृत्ति और प्राप्ति की जो सुखद अनुभूति होती है, परिपक्व रचना लिखने के बाद लेखक वैसे ही दोहरे संतोष का फल पाता है।

(2) कहानी लिखने के उपरान्त में लेखकीय दृष्टि से उसमें संशोधन या संवर्द्धन करने के लिए केंद्रित रहता हूं और विधागत पूर्णता पाता हूं।

(3) तत्पश्चात मैं उसे संपादकीय निगाह से जांचता-परखता हूं। माना संपादक हूं और यह कहानी प्रकाशनार्थ मुझे प्राप्त होती है तो मैं लेखक को इसकी स्वीकृति भिजवाऊं या संपादक के अभिवादन अथवा खेद सहित उसे वापस लौटा दूं।

(4) संपादक की कलम से उत्तीर्ण हो जाने पर मैं समीक्षक की दृष्टि से उसका मूल्यांकन करता हूं। तात्विक विवेचन के मद्देनजर समीक्षक की विधगत समालोचना पर कहानी खरी उतरती है अथवा नहीं। इस स्टेज पर आकर भी मेरी कहानी में कई मर्तबा बदलाव हुए हैं।

(5) आलोचना की कसौटी पर जब कहानी खरी उतर जाती है तो मैं एक सुधी पाठक की पैनी नजर से उसका सूक्ष्म आकलन करता हूं। गोया कि रचना का सबसे महत्वपूर्ण मूल्यांकनकर्ता पाठक ही होता है। पाठक का पत्र पूरी ईमानदारी से साथ कथाकार के पते पर पहुंचता है। हेतु यह है कि लिखा हुआ शब्द लेखक का अपना होता है। छपा हुआ शब्द पाठक का हो जाता है। खुद की यात्रा निर्धारित होती है, प्रकाशित शब्द की यात्रा का अनुमान नामुमकिन है। पाठक की प्रतिक्रिया कहीं से भी आ सकती है।

अमित धर्मसिंह : **आप अपने लेखन के उद्देश्य और सार्थकता को कैसे देखते हैं? यह भी बताएं कि नई उभरती संबंधित रचनाकार पीढ़ी से आप क्या कहना चाहेंगे?**

सांभरिया : मेरे सृजन का प्रथम उद्देश्य शोषित-वंचित वर्ग में जागृति का भाव पैदा करना है और यह जागृति केवल शिक्षा से ही आ पाएगी। 'शिक्षा शेरनी का दूध होती है' बाबा साहब का यह मूलमंत्र है, जिसे हमें संस्कार के रूप में लेना चाहिए। नवोदित लेखकों को लिखने के साथ-साथ पढ़ना भी खूब चाहिए। क्योंकि अध्ययन शब्दों की खेती कहलाता है। लेखक को किसान की दृष्टि रखनी चाहिए। किसान अपने खेत को जितना जोतता है, उसकी फसल उतनी ही फलीभूत होती है। इसलिए हमें अध्ययन और सृजन दोनों के लिए मेहनत करनी चाहिए।

पृ.23 का शेष

भारतीय समाज को पूर्ण एवं गहराई से समझा ही नहीं जा सकता। उसका विवरण एवं विश्लेषण एकांगी लगेगा। इसलिए हम कह सकते है की भारतीय समाजशास्त्र में प्रो. नन्दू राम अगर 'निचले पायदान का संदर्श या दृष्टिकोण' का प्रतिपादन नहीं करते तो भारतीय समाजशास्त्र में स्व-प्रतिबिंबन का नितांत आभाव होता।

अतः इन दोनों तथ्यों (उनके ज्ञान के उत्पादन एवं उनके दृष्टिकोण) के अभाव में कल्पना कीजिए भारतीय समाजशास्त्र कितना अपूर्ण और वस्तुनिष्टता से परे लगता। धन्यवाद सर । भारतीय समाजशास्त्र के अधूरेपन को पूरा करने एवं इसकी गुणवत्ता को और भी बढ़ाने के लिए। पुनः धन्यवाद सर भारतीय समाजशास्त्र को समग्रता प्रदान करने के लिए। हम सभी समाजशास्त्री आपके सदैव ऋणी रहेंगे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आज आप हमें भौतिक रूप से छोड़कर चले गए हैं, लेकिन आपने हमें और लाखों लोगों को जो ज्ञान दिया है, उसके जरिए आप हमारे साथ सदैव जीवित रहेंगे। हम आपसे वादा करते हैं कि हम आप द्वारा स्थापित की गयी ज्ञान की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए भारतीय समाजशास्त्र की सेवा करंगे।

कविता पाठ में वरिष्ठ कवि का सानिध्य

मुख्य अतिथि कवि

वरिष्ठ कवि मा. कर्मशील भारती
संपर्क
9968297866
ई-मेल:
bhartikaramsheel355@gmail.com

शब्द और विचार

शब्द किसी के
बाप की बपौती नहीं है
शब्द-शब्द है
वस्तु और उसकी अभिव्यक्ति के
प्रवक्ता शब्द
तुम्हारे और हमारे बीच का
अंतर मिटा देते हैं
अंतर भी कर देते हैं अत्यधिक
कभी-कभी
विचार किसी सेठ की
तिजोरी में बंध धन नहीं है
विचार जो शब्दों में गढी गई
किसी कविता की
विशिष्टतम पंक्तियां हैं
तो कभी-कभी
निकृष्टतम भी
वह विचार ही तो है
जो रामचरित मानस में लिखे गए है
तुलसीदास ने शब्द ही तो दिये
ढोल गंवार शूद्र पशु नारी
सकल ताड़ना के अधिकारी
भर दिया मानस ने जन मानस में
नारी के प्रति अलगॉव
यह जानते हुए भी
नारी उसकी मां भी है
बहन भी पत्नी भी और बेटी भी
यह जानते हुए भी
नारी संपूर्ण विश्व की जननी है
संपूर्ण विश्व का आधा-हिस्सा
वह भी विचार हैं
संविधान में जो
कानून बना दिए गए
भाषा लिंग और नस्ल के आधार पर
किसी के साथ भी बढ़ता नहीं
जाएगा भेदभाव
बरतेगा का जो दंड पाएगा
वह भी शब्द हैं
कहे थे जो कार्ल मार्क्स ने
दुनिया दो वर्गों में बांटी है
एक पूंजीपति दूसरा पूंजी विहीन
दुनिया के मजदूर एक हो जाओ
शोषण अन्याय रुकना है तो
क्रांति करनी होगी
खून बहाना होगा
तभी तुम्हें तुम्हारा अधिकार मिलेंगे
तो गौतम बुद्ध ने कहा
अहिंसा करुणा और त्याग
गौतम बुद्ध ने आगे कहा
मारना है तो मरो
स्वार्थ और अति महत्वाकांक्षाओं
को
पूर्वाग्रह और कुत्सित विचारों को
भाव जब हृदय की चौखट पर
करते हैं दस्तक
हृदय की छटपटाहट तब
तोड़कर दरवाजा आती है बाहर
तब आधारों पर अनायास ही
शब्द फुट पड़ते हैं
कलमबद्ध हो विचार बन जाते हैं
वह भी तो विचार ही हैं
शब्द बन कानों में
गुंजा करते हैं रात दिन
खय्याम की धुन पर शैलेंद्र के गीत
बरसते हैं मिठास हृदय में
वह भी तो विचार ही है
तना बन चूके हैं जो
किसी पड़ोसी या अपनों के द्वारा
थोड़ी-सी बात पर दी गई
अभद्र गालियों के रूप में
हृदय में जहर भर देते हैं
और यह भी तो शब्द है जो
कविता में ढालकर
मैं सुन रहा हूं आपको
अनायासी आकर्षित कर रहा हूं
आपको
शब्द और विचार किसी का मन
न आहत करें ऐसा संकल्प करें
शब्द और विचार बन सके
किसी की प्रेरणा ऐसी रचना रचे
ऐसे गीत लिखे ऐसी कविता लिखें
शब्द किसी के बाप की बपौती
नहीं है।

मजूरन

वह
प्रतिदिन निकल जाती है घर से

भोर होने के साथ-साथ
लेकर हाथ में
एक बड़ा-सा चुंबक
लटकाए कंधे पर
एक लंबी-सी झोली
पीठ पर लटकाए
अपने जिगर का टुकड़ा
लिपटा है जो कपड़े की
एक और झोली में
खोजती है विनती है लोहा
दोनों हाथों से
रेत से कचरा से
गलियों में सड़कों पर
कूड़े के ढेर से
खराब की स्कूटर की
मोटर की दुकानों के आसपास
पहने हुए कपड़े मैले से
ओढ़ चुनर भी वैसी ही
वह
उदास भी नहीं है
अपनी मेहनत के प्रति
निराशा भी नहीं है कल के लिए
ठीक भी नहीं मांगती है
सड़कों पर भिखारी की तरह
चोरी भी नहीं करती है
घूसखोरी भी नहीं करती है
दफ्तर में अफसर की तरह
बेईमानी भी नहीं करती है
दुकान में बैठे किसी लाल की तरह
बोलती नहीं है झूठ भी
तथाकथित राजनीतिज्ञों की तरह
इतिहासकारों की तरह
भेजते नहीं है अपना जिस्म भी
वेश्याओं कॉल गर्ल की तरह
वह
आश्वस्त है अपने कल के लिए
जो लटका है उसकी पीठ पर
भयभीत भी नहीं है वर्तमान से
पड़ा है जो चारपाई पर
उसके घर अपाहिज
हुआ था शिकार एक भयंकर
विस्फोट का
मजूरन
आंखों में लिए हुए
रोशनी कल की
खोजती है बिनती है लोहा
निरंतर
बहते हुए नदी के जल की तरह।

पीड़ा

अस्पताल में
प्रसूति गृह के बिस्तर पर
लेटी सुमन
असहाय प्रसव पीड़ा से पीड़ित
जीवन और मृत्यु से संघर्षरत
चिल्लाती है बार-बार
नर्स बहन जी डॉक्टर साहब को
बुलाओ
इस मृत्यु दायक पीड़ा से
मुझे जैसे भी हो
मुक्ति दिलाओ
वह कभी पुकारती है
मां ओ मेरी मां
कितनी देर और सहनी पड़ेगी
यह पीड़ा
अब तो पीड़ा सहन करने का
साहस भी
नहीं है मुझ मैं
मगर कोई नहीं सुनता
उसकी चीख पुकार
डॉक्टर अपने काम में व्यस्त
नर्स भी प्रतिदिन की
दिनचर्या में अभ्यस्त
वहीं दूसरी और खड़े थे
परिवार जन और संबंधी
कुछ मन में
कुछ धीरे-धीरे बोल रहे थे
पोता हो जाए?
बेटा हो जाए?
वंश चलाने को
कुल की परिवार की
पिता की दादाजी की
प्रतिष्ठा बढ़ाने को
विवश पड़ी अस्पताल के बिस्तर पर
मासूम सुमन का
रोना और रह-रहकर पुकारना
मां! मां ओ मेरी मां!
उन्हें कब अच्छा लगता था
रही वेदना हर स्त्री सह लेती है
यह प्रसव वेदना
कहकर सब शांत बना देते हैं
वहीं तीसरी और खड़ी थी
मां उसकी
संघ पिता भी भाई भी
सबके मन में एक लगन थी
नाती केवल नाती हो तो
कितना अच्छा हो
नाई की साथी आ गई तो
जीवन और भी बस बनेगा
सुमन असहाय थी
बिस्तर पर पड़ी हुई
जूझ रही थी
मृत्यु से जीवन से
पल पल प्रतिपल
कभी सांस थामती सी लगती
कभी रक्त धमनियों में चलता
और कभी लगता थमता सा
वहीं खड़ा खड़ा कोई सोच रहा था
क्यों नहीं सोचता कोई?
सुमन दीर्घायु हो
सुमन अपने घर जल्दी लौट
पीड़ा तो दोनों की पीड़ा

लड़की जन्मे लड़का जन्मे
एक समान एक तरह की
पीड़ा है
वह केवल पीड़ा है
कष्टप्रद है
बहुत दुखद है।
जाति से तौबा
वह
जन्म था जब
मनुष्य था
कुछ भी नहीं था उसके पास
माथे पर अहंकार का वैदिक तिलक
न शरीर पर
किसी श्रेष्ठ का जनेऊ
ना सर पर किसी साहिब ग्रंथी
पगड़ी
ना बर्बर आदिम काल की पशुता
का खतना
ना गले में लटका
किसी प्रकार की विवशता का क्रॉस
वह मनुष्य था
मेरा कोड़ा मनुष्य
वह नहीं जानता था
कोई धर्म वर्ण जाति और लिंग
भाषा और विभेद
अब उसे सिखानी थी मानवता
सीखना था
मनुष्य होने का सार्थक अर्थ
बचपन में ही उसे
घुट्टी में पीला-पीलाकर
द्वेषपूर्ण जातिवाद का
कुसंस्कारों के द्वारा
मस्तिष्क में भर दिया गया
दूसरों के प्रति दुराव
हुंडई कम कमांडो और वैज्ञानिक
आडंबरों ने बना दिया
उसे मानसिक रूप से दीन-हीन
असामाजिक
बना दिया उसे
कट्टर जातिवादी
पूर्ण वैज्ञानिक
मानवता का घोर विरोधी
बन गया वह समाज और राष्ट्रद्रोही
बन गया वह
अन्याय का पक्षधर
शोषण और अत्याचार्यों के समक्ष
घुटने टेकू संस्कृति का समर्थक
यानी जातिवादी हिंदुस्तानी
धत् तेरी जाति की ऐसी की तैसी
तौबा ऐसी जाति से तौबा ।
मनुष्य ही नहीं बनने दिया
जाति से तौबा
जाति से तौबा

मानवता नहीं है जिसमें

मुझे
मनुष्य कहने मानने समझने मे
आज तक
अवहेलना संकोच करता रहा
वह
सदियां बीत गई
मार खप गई
मेरी भी असंख्य पीढ़ियां
इस सवाल को
समझने सुलझाने में
मुझे
मनुष्य क्यों नहीं समझता मानता
वह
क्यों नहीं मानवता का व्यवहार
करता
मेरे साथ वह
मेरी पीढ़ियां और मैं
बार-बार सोचती और समझती रही
इस सवाल का उत्तर
उसके पास है शायद
पर मै गलत था
स्वयं नहीं समझ पाया
जो मानवता
मनुष्य होने का सही अर्थ
समझ नहीं पाया जो सामाजिकता
सामाजिक प्राणी होने का अर्थ
समझ नहीं पाया जो राष्ट्रीयता
राष्ट्र प्रेमी होने का सच्चा अर्थ
समझ नहीं पाया समाज
और उसकी सामाजिकता
संवेदनाएं
समाज में रहने का अर्थ
बन गया वह निरा जातिवादी
बन गया वह असामाजिक
मानव और राष्ट्र विरोधी
एक बीमार मानसिकता की सुरंग में
घूमता हुआ मनुष्य
मनुष्य होते हुए भी
मानवता नहीं है उसमें
मैं कहता हूं मानता हूं और सलाह
देता हूं
तू मनुष्य तो बन
सीख मानवता
मानवता का सही अर्थ
समझ और सीख
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का
सामाजिक अर्थ।

चुप ठीक नहीं था

पहली बार
किसी ने जब मुझे
हरिजन कहा था

नोज क्यों नहीं लिया था
मैंने उसका मुंह
खींच क्यों नहीं ली थी
मैंने उसकी जुबान
पहली बार
किसी ने जब मेरी
बहन पत्नी बेटी पर
डाली थी बुरी नजर
चीर क्यों नहीं दी थी मैंने
अपनी टांग पर रखकर
उसकी टांग
पहली बार
किसी ने जब जलाया था
खून पसीने और ईमानदारी से
कमा कर
बनाया हुआ घर
मैंने कर क्यों नहीं दिया था
उसका सर
धड़ से अलग
फाड क्यों नहीं दी थी मैंने
उसकी छाती
मैंने निकल क्यों नहीं दी थी
उसकी सारी अनतड़िया
पेट से बाहर
क्यों रह गया मैं चुप?
क्यों पी गया था?
अपमान, अन्याय, शोषण, अत्याचार
के घूंट
क्यों देखता रहा
वह सब अपनी आंखों से
मेरी शालीनता-सहनशीलता को
उन्होंने कायरता समझा
कर दिया मुझे
अस्तित्वहीन-साधनहीन संपत्ति और
विद्याहीन
मैं अब कल को नहीं दोहराने दूंगा!
मुझे अब किसी भी तरह का
चुप सहन नहीं है?
मैं लडूंगा अब
चुप रहने वाले उसे स्वभाव से भय से
मैं धार दूंगा अपने अस्त्र शस्त्रों को
प्रतांचा चढ़ाऊंगा अपने तीरों पर
शंखनाद करूंगा
इस अन्यायपूर्ण-भेदभावपूर्ण
अमानवीय और दमनकारी व्यवस्था
के विरुद्ध
मैं कर नहीं हूं
मैंने संगठित किया है बचाया है देश
महान योद्धा चंद्रगुप्त मौर्य बनकर
मैंने फैलाया है धम्म
मानवता के संदेश को
शांति दूत सम्राट अशोक बनकर
जुड़ा है सारा समाज
विश्व रतन बाबा साहेब डॉक्टर
आंबेडकर बनकर
मुझे अब किसी भी तरह का चुप
सहन नहीं है।

वर्ण व्यवस्था

हज़ारों वर्ष पहले
भारतीय समाज में ब्राह्मणों द्वारा
अपना वर्चस्व और तथा कथित
श्रेष्ठता शुद्धता पवित्रता
घोषित कर मनवाने का
एक भयंकर षड्यंत्र
रचा गया था
वर्ण व्यवस्था
इसके अंतर्गत
पहले वर्ण और फिर
जातियों में बांटकर
सारे समाज को
गूंगा बहरा और पंगु बनाकर
स्थापित किया गया था
वर्ण व्यवस्था को
जायज बताते हुए
इन ब्राह्मणों ने
कुतर्क करना शुरू कर दिया
स्याह को श्वेत करना
श्वेत को स्याह करना
उनके स्वभाव में
शामिल है आज तक।
इस वर्ण व्यवस्था में
प्रत्येक व्यक्ति को
कुछ और निम्न के
कोढ से ग्रसित
एक मानसिक रोगी
बना दिया गया
इस वर्ण व्यवस्था ने
समाज के कुछ
निठल्ले निकम में लंपट
और धूर्तों को
मुफ्त की खाने वालों को
विशेष अधिकार दिए
शास्त्र सम्मत करार दिया
शेष बहुत-जन समाज पर
अशुद्ध अपवित्र और नीचे होने का
बोझ ला दिया गया
इस वर्ण व्यवस्था का
विरोध करने वालों का
संहार

अतिथि कवि

कविता पाठ के लिए डॉ. वर्षा सोलंकी सादर आमंत्रित हैं...

डॉ. वर्षा सोलंकी

शिक्षाः
एम.ए. हिंदी
एम.ए. जन संचार एवं पत्रकारिता

संप्रति : अध्यापक

विशेष :
इलेक्टॉनिक्स मीडिया में साहित्यिक पत्रकारिता

सम्मान
'साहित्य शिरोमणि', 'अंतर्राष्ट्रीय तथागत सृजन सम्मान', 'विद्या सागर सारस्वत सम्मान', 'अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सेवी तपोनिष्ठ सरस्वती सम्मान' जैसे कई सम्मान से सम्मनित। इसके अलावा हिंदी महाविद्यालय राजमहेंद्रवरम, गोमांतक राष्ट्रभाषा विद्यापीठ, गोवा एवं मैसूर हिंदी प्रचार परिषद, बंगुलुरु से सम्मानित।

कृतिः
(1) हिंदी काव्य संग्रह 'अंतर्मन'
(2) हिंदी कहानी संग्रह 'वृंदा' एवं गुजराती काव्य संग्रह 'मननी मिरात'

संपर्कः
947710616, 8320118498
ई-मेलः
solankivarsha575@gmail.com

जीने की इजाज़त

मैं हर रोज़ सुबह
अपनी ही छाया को पहनती हूं,
आईने में मुस्कराती हूं–
जैसे सब कुछ ठीक है।
पर रात के अकेलेपन में
मैं टूटती हूं–
शब्दों के उन टुकड़ों में
जो किसी से कहे नहीं गए।
कभी मैं मां हूं,
तो कभी प्रेमिका...
कभी मज़दूर, कभी देवी,
पर असल में मैं कौन हूं?
मैं वो हूं
जिसने अपने सपनों को
सबकी नींदों के नीचे दबा दिया–
बस इसलिए कि घर चलता रहे।
मैंने लड़ाइयां लड़ी–
बिना शोर के, बिना तलवार के,
माथे की बिंदी में
अपने आंसुओं को छुपा लिया।
और फिर
एक दिन
मैंने खुद से पूछा–
'क्या मुझे जीने की इजाज़त है?'

जिंदगी और खामोशी

जिंदगी चलती रही
खामोश हवा की तरह
न कोई शोर,
न कोई निशान छोड़ती हुई।
रास्तों पर मैं थी–
पर कोई मंज़िल न थी...
कभी किराये के घर में
ख़ुद से बातें करती रही,
कभी वक़्त की दीवार पर
तेरे नाम की परछाइयां टांकती रही..
किसी ने पूछा–
'अब किसका इंतजार है?'
मैं मुस्कुरा दी–
जैसे सवाल सुना ही न हो...
कुछ रिश्ते किताबों जैसे थे–
पढ़े भी गए, समझे भी नहीं।
कुछ ख़्वाब बारिश की तरह गिरे–
भीगकर भी, प्यासे ही रहे...
अब भ चल रही हूं–
बस उस हवा की तरह जो खुद भी थक चुकी है,
मगर रुकना जानती नहीं...

तमाशबीनों की दुनिया

तमाशबीनों की दुनिया में
हम तन्हा चलने वाले हैं।
हर मोड़ पर इक भीड़ मिली,
पर सब चेहरे भाले हैं।
ताली भी पड़ी गिरने पर,
और वाह-वाह भी मिलती थी,
मगर किसी ने आंसू पूछे,
ऐसी रस्म कहां चलती थी।
हमने तो बस सच बोला था,
झूठों की ये महफ़िल क्या थी,
जहां हर शक्ल पे नक़ाब था,
और हर बात अदावत-सी थी।
तमाशबीनों की दुनिया में,
जो रोया-वो कमज़ोर बना,
जो चुप रहा–वो मसीहा कहलाया,
जो टूट गया–वो शायर बना।

सुना है कल हिजड़ों की महफ़िल लगी थी

सुना है कल हिजड़ों की
महफ़िल लगी थी
जहां वक़्त को
आईना दिखाया गया था
जहां तालियां गूंजी थीं,
पर तमाशा नहीं था
जहां आंखें नम थीं,
पर भीख नहीं थी
वो जो गाली बन गए थे
तुम्हारी जुबानों में
कल अपने नाम के आगे
गर्व से मुस्कराए थे
और हमने,
जो मर्द और औरत के
सांचों में पलते रहे
कभी खुद से भी
आंखें नहीं मिला सके
सुना है कल
उन्होंने सवाल किए थे
क्या लिबास से इज़्ज़त मापोगे?
क्या जिस्म से जज़्बात तोलोगे?
क्या तालियां सिर्फ़
तमाशे की गूंज होंगी
या कभी इंक़लाब की भी?
मैं सोचती हूं–
हम सब जो
ख़ुद को मुकम्मल कहते हैं
असल में अधूरे हैं,
क्योंकि सच कहने की
हिम्मत अधूरी है
कल जिनकी चुप्पी पर
हंसी आती थी
आज उनकी ख़ामोशी में
अनगिनत ख्वाबों की
रोशनी झलकती है।

मलाल

मलाल तो मुझे तब भी नहीं था
आज भी नहीं है।
जब सबने मेरी ख़ामोशी को
कमजोरी समझा
जब रिश्तों ने
मेरा साया तक लौटाया
जब आवाज मेरी
और फैसला तुम्हारा था
मैं टूटी नहीं,
सिर्फ़ थोड़ा थक गई थी
मुझे आदत है
मुस्कराने की–
जब आंसू क़तार में हों
और आदत है
खामोश रहने की–
जब दुनिया शोर मचाए
मैंने कुछ ख़्वाबों को
सीने में ही दफ़ना दिया
कुछ को तन्हा छो दिया
खुली खिड़की के पास
पर मलाल तब भी नहीं था
आज भी नहीं है
क्योंकि मैंने खुद को
कभी किसी के हिस्से में नहीं बांटा
और नही
अपनी क़ीमत लगने दी
मैं आज भी वहीं हूं–
जहां से लौट आना सबने सीखा
और रुक जाना सिर्फ़ मैंने।

अपनी जगह

जो औरत हर बार टूटी
वही हर बार सबसे ऊंची उठी।
जिसे वक़्त ने कोसा,
जिसे दुनिया ने कभी जगह नहीं दी,
जिसे उसके होने से भी एतराज़ रहा
वो ही औरत
हर किरदार की रीढ़ बनी।
जिसके सपनों को
सुबह से पहले ही कुचल दिया गया,
जिसकी हंसी पर तंज लिखे गए,
जिसकी चुप्पी को
कमजोरी समझा गया
वो ही औरत
हर रोज़ अपने आंसुओं से
एक नया सूरज उगाती रही।
तुमने जो इमारतें खड़ी की
उनकी नींव में उसका खून मिला है।
तुमने जो रिश्ते पाले,
उनमें उसकी सांसे शामिल हैं।
तुम उसे तोड़ सके
ये सच है
मगर मिटा ना सके
ये इतिहास है।
जो औरत हर बार टूटी,
वही हर बार सबसे ऊंची उठी।
और इस बार वो झुकी नहीं
उसने अपनी जगह
खुद गढ़ी।

वक्त का शहरा ओढ़े कोई दस्तक दे जाता है
समझते है जिसे अपना जैसे वो आ जाता है
गलियों से गुजरता शाया भी देखो तो सही
तन्हाई में दिल से गुजरकर नज़्म बन जाता है

कविता पाठ के लिए डॉ. सीमा माथूर सादर आमंत्रित हैं...

डॉ. सीमा माथुर

संप्रति : असिस्टेंट प्रोफेसर
दिल्ली विश्वविद्यालय

कृति:
(1) 'योअर लॉ योअर राइट'-2021
(2) अट्रोसिटिज ऑन दलित वोमैन इन इंडिया: अ स्लैंक्टेड स्टेडी ऑव पैटर्न एंड फॉम्स' 2013
प्रतिष्ठित जर्नल में शोध पत्र प्रकशित।

विशेष :
नेशनल कोसिल फोर वूमैन की सह-संस्थापक एवं आंबेडकरवादी लेखक संघ की कार्यकारिणी सदस्य।

सम्मान
नारी शक्ति एक्सेलेंस अवॉर्ड-2020
सावित्री बाई फूले सम्मान-2022

संपर्क:
7503655071

ई-मेल:
seemaancdhr@gmail.com

आधा-आधा

कहते हो आधा-आधा
मतलब आधी आबादी!
अच्छा! तो हम हैं
आधी आबादी
तो कर दो ना
सब आधा आधा
बांट लो सब आधा-आधा
कर लो घर की जिम्मेदारी में
हिस्सा आधा-आधा
क्या? आधा-आधा?
मैं तो लाता हूं
कमाकर पूरा-पूरा
नहीं! नहीं! घर की जिम्मेदारी में
हिस्सा आधा-आधा
मतलब?
तुम भी बना लो
रसोई आधी
उठा लो बच्चों के
डायपर चेंज की जिम्मेदारी
मां-पापा के नाश्ते
दवाई की जिम्मेदारी
मतलब, घर की
आधी जिम्मेदारी
कहते हो आधा-आधा
मतलब, आधी आबादी
अच्छा! तो हम हैं
आधी आबादी
तो कर लो सब
आधा-आधा
बांट लो सब
आधा-आधा
तो मिल जाए खुशियां
मुझे भी पूरी पूरी!!

आंख की किरकिरी

बन जाती हैं किरकिरी
आंख की वे लड़कियां
जो कर देती हैं
खिलाफत तुम्हारी
आधिकारिक सत्ता की
बगावत चुप्पी की व्यवस्था की
बन जाती हैं किरकिरी
आंख की वे लड़कियां
जो दाग देती हैं
पुरुषवादी सोच पर
सवालिया निशान
पूछ लेती हैं
गलत बात पर तुमसे सवाल
बन जाती हैं किरकिरी
आंख की वे लड़कियां
जो उधेड़ देती हैं
सदियों से सिले
अपने होठों की सीवन
कर देती हैं विरोध
अपने अपमान और
तिरस्कार का
बन जाती हैं किरकिरी
आंख की वे लड़कियां
जो कर देती हैं
चुपचाप तुम्हारी
बात मानने से इंकार
समझदार होतीं
अपने हकों की
बात करती

ये लड़कियां
हां, मुझे पसंद हैं
आंख की किरकिरी
बनती ये लड़कियां।।

बेटियां

गूंजती रहती हैं
अनगिनत आवाजें
कौंधते रहते हैं हजारों
सवाल मन में
क्या आएगी कभी
वह सुबह नई रोशनी
नई उम्मीदों के साथ
जब बेखौफ हो घरों से
निकल सकेंगी बेटियां
क्या आएगी कभी
वह सुबह नई रोशनी
नई उम्मीदों के साथ
जब नहीं होंगी
हॉनर-किलिंग,
एसिड-अटैक
हत्या-बलात्कार की
शिकार बेटियां
लिंग-परीक्षण
भ्रूण-हत्या और
अगर बच गईं तो
बाल-विवाह
घरेलू-हिंसा
दहेज-हत्या की
नहीं चढ़ेंगी
बलि बेटियां
कभी तो आएगी
वह सुबह नई रोशनी
नई उम्मीदों के साथ
जब बिना किसी
जाति और जेंडर
भेदभाव के महसूस
कर पाएंगी स्वयं को
स्त्री से ऊपर
सिर्फ एक इंसान
ऐसे ही अनगिनत
सवालों से रोज
जूझती रहती हूं मैं
क्या आएगी वह सुबह
जब बिना किसी डर के
जी पायेंगी बेटियां।

दोगला समाज

दहल जाता है दिल
कांप जाता है शरीर
जब बनाया जाता है
हमारी बच्चीयों
महिलाओं को
बलात्कार
गैंग रेप
हत्या की शिकार
जला दी जाती हैं
मिटाने को
सारे सबूत
उस पर भी
साधे रहता है चुप्पी
यह निर्मम क्रूर
जातिवादी
दोगला समाज!

पीपनी

कुछ लोग जो रहते हैं
आम लोगों से दूर
बहुत दूर...
अचानक बन बैठते हैं
हिमायती उनके
देख अवसर
कुर्सी और सत्ता के
फुर्ती से बदल जाते हैं वे
जैसे बदलता है रंग गिरगिट
बजाने लगते हैं पीपनी
बदलाव की
करने लगते हैं
बातें विकास की
और चिल्लाते हैं
जोर-जोर से
उठाकर दोनों हाथ
जैसे सही हैं सिर्फ वही
और बाकी सब गलत...
लेकिन आने के बाद सत्ता में
लगने लगता है सब गलत
मतलब! सब कुछ गलत
और लग जाते हैं
बदलने में सब
पूरी ताकत से
और बदल देना
चाहते हैं उसे भी
जो सही था...
क्योंकि उन्हें लगता है कि
वही हैं सही और
बाकी सभी गलत।

खरबूजा

सुना है खरबूजे को देखकर
खरबूजा रंग बदलता है
काश! इंसान को देखकर
इंसान भी रंग बदलते
तो नहीं होती
ऊंची इमारतों और
झोपड़ी के बीच दीवारें
नहीं होते बंद
मंदिर, मस्जिद
गुरुद्वारे के द्वारे
नहीं होता कोई मजबूर
मैला उठाने को

मा. पंकज चौधरी

का जन्म बिहार के सुपौल जिला के कर्णपुर में **15 जुलाई, 1976** *को हुआ। आपकी कविताएं और आलेख सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपके दो कविता संग्रह 'उस देश की कथा' एवं 'किस-किस से लड़ोगे' प्रकाशित हैं और तीसरा संग्रह 'अंतहीन लड़ाई' शीध्र प्रकाश्य है। आपने दो पुस्तकों 'आम्बेडकर का न्याय दर्शन' और 'पिछड़ा वर्ग' का सम्पादन भी किया है। आपकी कविताओं का अंग्रेजी, मराठी, बांग्ला, गुजराती, मैथिली और तेलुगु में अनुवाद हुआ है। आपको बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के 'युवा साहित्यकार सम्मान', प्रलेस का 'कवि कन्हैया स्मृति सम्मान', पटना पुस्तक मेला का 'विद्यापति सम्मान' और 'नई धारा रचना सम्मान' से सम्मानित किया जा चुका है।*

मोबाइल
9910744984, 9971432440
ई-मेल
pkjchaudhary@gmail.com

कविता पाठ के लिए मा. पंकज चौधरी सादर आमंत्रित हैं...

आविष्कार

बैसाख-जेठ की दोपहर में
पिताजी खेत पर से जब आते
धूप का रौद्र रूप
उनको ऐसे सूखा चुकी होती
जैसे पाताल को वह सूखा देती है।
उनकी लूंगी और बनियान पर
सफेद-सफेद धारियों के चकत्ते
निकले होते
उनके शरीर का सारा नमक
निकल चुका होता।
बैलों को खूंटे पर बांध
अपने को शक्तिहीन बताते
पिताजी ओसारे पर ढेर हो जाते।
मां चापाकल को खूब चलाकर
एक जग जल भरकर ले आती
उसमें मन भर चीनी डाल देती,
दो कागजी नीबू
उसमें निचोड़ डालती,
और आठ-दस पूदीने के पत्ते को
उसमें फेंट देती।
मां पिताजी को वह शरबत पिलाती
पिताजी का गला जैसे ही तर होता
उनमें जान आ जाती
जैसे ही उनमें जान आती
वे कह उठते
अभी दो कट्ठा खेत और हैं
कोड़ने को!

मेरा सांर्ष

एक ने मुझे डस्टबीन में डाल दिया
दूजे ने नौकरी से निकाल दिया
तीजे ने नजरबंद करने की कोशिश की
चौथे ने ब्लॉक कर दिया
पांचवें ने हुक्का-पानी
बंद करवा दिया
मेरा कसूर यही है कि
मैं जाति को अनलॉक करता हूं।

रास्ता

पहली बार
उस रास्ते से गुजर रहा था
तीन किलोमीटर की दूरी
तीन सौ किलोमीटर लग रही थी
लग रहा था कि
जैसे खाइयों-खंदकों में
गिरा जा रहा हूं,
पहाड़ों की चढ़ाई कर रहा हूं
पहाड़ों की चढ़ाई करते-करते
वहां से फिसल रहा हूं
झाड़-झंखार और जंगल
रास्ता रोक रहे हैं
धूल भरी आंधियों के बवंडर में
मैं खोता जा रहा हूं।
पैर अशक्त हो चुके हैं
आंखें निस्तेज
और कंठ सूख गया है।
दूरियां पाटे नहीं पट रही थीं।
उसी रास्ते जब लौटना हुआ
दुबारा-तिबारा फिर जाना हुआ
दूरियां तीन सौ किलोमीटर की
दो-एक किलोमीटर में सिमटने

लगीं।
रास्ता बनाने की यही कहानी है
पहले वह थकाती है, रुलाती है
फिर हंसाती है।

कच्चा माल

ये उन दिनों की बात है
जब मुझे नौकरी से
निकाल दिया गया था
आंदोलन को
मेरी जरूरत नहीं रह गई थी
समाज के लिए
मैं फालतू हो चुका था
प्रेमिका मुझे
कामांध मानने लगी थी
और पत्नी आवारा।
बच्चों ने मुझमें
दिलचस्पी लेना बंद कर दिया था
और मित्रों ने खोज-खबर
मां-पिता मुझे कुपुत्र मान चुके थे
और भाई-बहन निक्कमा।
मैं जीवन की निरर्थकता के बोझ से
दबा
आत्महत्या की ओर
कदम बढा रहा था।
इतना ागसान चल रहा था
मेरे साथ
और मैं अपने-आप को
सर्वथा निर्योग्य और
खाली समझ रहा था।
आज वही सब कुछ
एक-एक कर
कविता में उतर रहा है।

सांत्वना

कितनी राहत मिलती है
कितना सुकून पहुंचता है
चिंता कितनी कम हो जाती है
आत्मा का बोझ
कितना हल्का लगता है
आंसू कैसे छलक पड़ते हैं
जब किसी नाउम्मीद हो चुके
आदमी से
कोई यह कहता है-
'ाबराओ नहीं तुम्हारा हो जाएगा।'
भले ही वह
झूठ ही क्यों न बोलता हो!

नए युग के शत्रु

जंग खा चुके विषयों
पिट चुके मुहावरों
ािस चुके शब्दों
आयातित और निर्जीव हो चुकी
भाषा
लूटने-पिटने की ध्वनियों
और अस्पष्ट उद्देश्यों से युक्त
हिंदी में कोई कविता लिखी जा
सकती है महाकवि,
उससे ज्यादा से ज्यादा अपनी
उपस्थिति दर्ज कराई जा सकती है
उससे नए युग के शत्रुओं से नहीं
लड़ा जा सकता महाकवि।

रीति

चलती ट्रेन में चढ़कर
सीटों पर कब्जा कर लेती है
पैसेंजर्स की आवारा भीड़
चलती बस में दौड़कर
सीटों को हथिया लेता है
यात्रियों का धकमपेल हुजूम
मेट्रो ट्रेन के फाटक खुलते ही
सीटों को छेक लेती है
यात्रियों की अधीर भीड़
शक्तिशाली पहुंच जाते हैं
अपने गंतव्य पर
कमजोर पड़े रह जाते हैं
प्लेटफॉर्म पर।

नियम

बदलो, बदलो
खुद को बदलो
नहीं बदलोगे
तो प्रकृति देगी तुम्हें बदल
काई
उसी पानी में है लगता
जो प्रवाहित होना नहीं चाहता
जंग
उसी लोहे में है लगता
जिसका इस्तेमाल नहीं होता
ऊसर
वही खेत हो जाता
जिसकी जुताई-बुआई नहीं होती
फफूंद
उन्हीं फल-फूलों में है लगते
जो रखे ही रह जाते
दुर्गंध
वही छाली देने है लगती
जिसे समय पर मथा नहीं जाता।
मनुष्य
बदलने को जब नहीं हो तैयारतब
प्रकृति ऐसे भी बदलती उन्हें।

एकाग्रता

पहाड़ पर चढ़ने लगो
तो ऊपर मत देखो
नीचे भी मत देखो।
ऊपर देखोगे
तो डर जाओगे
नीचे देखोगे
तो गिर जाओगे।

अतिथि कवि

कविता पाठ के लिए
मा. विद्या राजेंद्र मोरे सादर आमंत्रित हैं...

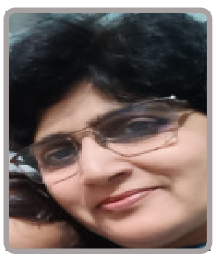

मा. विद्या राजेंद्र मोरे

जन्म
1 जून 1972
शिक्षा
स्नातक
विशेष
कवयित्री, सामाजिक चिंतक व कार्यकर्ता
कृति
दो पुस्तकें प्रकाशित
(1) 'माइया मनातले निखारे' (मराठी)
(2) इरादों से परे (हिंदी)
संपर्कः
9011275294

कौन क्या करता है?

कौन क्या कर रहा हैं
इस पर ध्यान देने के बजाय
हम क्या कर रहे हैं
इस पर ध्यान देना बहुत जरूरी है।

इसकी उसकी गलती पर
सवाल उठाने से पहले
क्या आप खुद हैं सही राह परं
ये सोचना जरूरी होता है।

खामियां तो हर एक में हैं
कमी दूसरों की नजर आती हैं।
दुसरों पर सवाल उठाना आसान है
सवाल जब होंगे हम से
जी-जान पर बन आती है।

मजबूर

खुशी हो या गम
दोनों साथ नहीं
रहा करते हैं
खुशी सबको हंसाती
और
गम आंखों में बूंदें बनकर
पानी की तरह बरसने पर
मजबूर करतीं हैं

इरादों से परे होकर

लेना चाहती हुं
खुलें आसमान में ऊंची उड़ान
परिंदा बन कर
जहां घुटन ना हो ना बेईमानी
ना किसी घमंड का अहसास
बस मुक्त संचार करना चाहती हूं
अपने मन की सुनना चाहतीं हुं बस
पर जलने वाले को
बहुत जलन होती हैं
अपने मगरूर में अंधे हो कर
खुद को हुक्मरान समझते हैं वो
अपने आप को बादशाह
समझते नजर आते हैं
किस बात पर इतना इतराते हो
गद्दारी की कमाइ हुई
नाम शोहरत से
हराम कि कमाई से
इस को उस को खरी खोटी
सुनाकर नीचा दिखाने की
हमेशा कोशिश करते रहते हैं,
अपने आप को बड़ा शातिर
समझने कि भुल करके
दुसरो को कठघेरे में खड़ाकर
खुद ही फैसला सुनाया करते है
ये बेईमानी की भरी हुई चदर
कोई नहीं पूछता
जब खुद पर बात बनती हैं
तो पास कोई नजर नहीं आता
देख उधर आसमां को
छूने की कोशिश करते हैं
अपने आप पर खुद बेइंतहा

विश्वास को सामने रखकर
ना तोड़ पायेंगे उसको तुम
अपनी बेईमानी नासाज
नाकामी के नाजायज
इरादों से परे होकर
बस इतना समझ लो तुम
बस इतना सोच लो तुम

उन यादों में

तुम होते तो ऐसा होता
तुम होते तो वैसा होता

हल्की-सी मुस्कान से सारा
दर्दे चुटकियों में दूर होता
हर पहलू में तुम होते हो
हर अदा में नजर आते हो

बस एक नया चेहरा लेकर
इस दुनिया में पधारे हुए है
हरकतें ते वहीं चाल-ढाल भी
पास आकर
नम हो जाना भी वही है
कौन-कौन सी यादें बयां करूं मैं
लिखते हुए
उस दुनिया में पहुंच जाते हैं
जहां से
सफर शुरू किया था
वहीं जाकर ढूंढने की
कोशिश करते हुए नजर आते हैं
आप होते तो ऐसा होता
आप होते तो वैसा होता
बस उन यादों में आंख
बंद करके खो जाया करते हैं

दुनिया

दुनिया कहें बेगाना हमें
पर हमने कभी ना कहा
बेगाना दुनिया वालों को
एक सीख मिलीं उनसे
चुप्पी बनाए रखना बस
खुद को सही साबित
करनें में वक्त जाया मत करना
वक्त ही है कि
एक दिन जमी से
उठाकर सितारे बना देगी
बस थोड़ा सा सब्र रखना
दुनिया वालों को
कोसते मत बैठना
खुद इम्तिहान देने की
कगार मे खड़े
कभी ना रहना
एक दिन हमारा है
यही सोच हमेशा
याद रखना बस।

शिकायत

मेरे शहर में आके
ना मिलोगे
ये तो अच्छी बात नहीं
मेरे शहर का दीदार करोगें
हमें पता ही नहीं
ये तो कोई अच्छी बात नहीं
ना इल्जाम लगा
ना फरियाद किया
क्या वजह हुई
हमारे शहर में आके
दीदार ना हुआ हमसे
ये तो कोई अच्छी बात नहीं
क्या शिकायत थी
क्या शिकवा था
थोड़ी-सी बात कर लेते
हमें तो
गलतफहमी होती
तो नहीं
आये थे हमारे ही दर पर
हम हिस्से मिलने
फिर क्या बात हुई
ना मिलने की।

बेईमान

देखा है जिसे वह भागता, पैसे के पीछे नजर आता है!
आव देखे न ताव बस, जिसे पैसा ही नजर आता है।
दुसरो की फिक्र है और, न ही खुद का कोई ख्याल,
बेईमान है इंसान इतना कि, बेचता अपना ईमान नजर आता है।

डर

डर-डर कर रहे जो, खुद पर, भरोसा कर नहीं सकता।
भरोसा नहीं खुद पर, किसी पर, वह कर नहीं सकता।
वही तोड़ते है भरोसा, बेरहम होकर, भरोसा करने वाला का,
जीवन में जिसे कभी, अच्छे-बुरे का, ज्ञान हो नहीं सकता।

कविता पाठ के लिए
मा. महेंद्र सिंह कामा सादर आमंत्रित हैं...

मा. महेंद्र सिंह कामा

जन्म

16 मई 1980

शिक्षाः स्नातकोत्तर

विशेष

कवि, सामाजिक चिंतक व कार्यकर्ता

कृति

पुस्तकें

काव्यधारा-1

प्रकाशनाधीन पुस्तकें

काव्यधारा-2

काव्यधारा-3

संपर्कः

9719495964

नारी

सारा जग जिसने है बनाया
जो मानवता की है शान
सबसे ऊपर दर्जा जिसका
ऐसी नारी की है पहचान
घर के आंगन से लेकर के
अंतरिक्ष तक जो है जाए
माउन्ट एवेरेस्ट पर गाड़कर झंडा
महिला का सम्मान बढ़ाये
किसी से पीछे नही है नारी
हर क्षेत्र में उसका नाम
कई रूप की मालिक है ये
कहीं गृहणी कहीं निजाम
व्यवस्था में निपुण है नारी
चाहे घर हो चाहे देश
हिम्मत है रग रग में इसकी
चाहे कैसा हो परिवेश
कुल की ये रक्षा है करती
जो देती है सबको ज्ञान
देश पे जान निछावर करने
में समझे जो अपनी शान
नारी ही है जगत की जननी
जग करता नारी को सलाम
रमा सावित्री जिजाऊ बाई
नारी शक्ति के हैं नाम
सारा जग जिसने है बनाया
जो मानवता की है शान
सबसे ऊपर दर्जा जिसका
ऐसी नारी की है पहचान

चल कबीरा के पथ पर

चल कबीरा के पथ पर
जीवन होगा सफल -2
हटेगा मिथ का अंधेरा
सच का आएगा कल -2
चल कबीरा के पथ पे
जीवन होगा सफल
आडंबर को छोड़ दे
झूंठ की रीती को तोड़ दे
अज्ञानता में पतन है
ज्ञान के संग में चल-2
चल कबीरा के पथ पे
जीवन होगा सफल
शिक्षा ही है ज्ञान का सूरज
तर्क और विज्ञान है सच
ढोंग और पाखंड छोड़ दे तो
सच में आएगा बल-2
चल कबीरा के पथ पे
जीवन होगा सफल
मूर्ति पूजा छोड़ दे
मत कर देवों ध्यान
मानवता में खुदा है
सबकी बाढाए जो शान
इंसान से हर बोलता चल-2
चल कबीरा के पथ पे
जीवन होगा सफल

तुम बनो यथार्थ सच का दर्पण

तुम बनो यथार्थ, सच का दर्पण
महापुरुष साहित्य की बात करो

जो दिखता है वह यथार्थ है
तुम सत्य पर बात करो
तुम बनो यथार्त साहित्य का दर्पण
सिर और उसके अंदर की बात करो
तुम बनकर सच उभारो जग में
जिंदादिली की बात करो
तुम बनो यथार्थ साहित्य का दर्पण
सिर और उसके अंदर की बात करो
ना बनो भीड़ का तुम हिस्सा
तुम इस जग का नेतृत्व करो
तुम करो साफ मानसिकता को
और दिमागों को तुम वाश करो
तुम बनो सशक्त की परिभाषा
तुम मूलनिवासी इतिहास गढ़ो
और बढ़ जाओ विजय के पथ पर तुम
अपना ऐसा हर वार करो
तुम बनो यथार्थ, सच का दर्पण
महापुरुषों, साहित्य की बात करो
तुम ही तिलका तुम्ही बिरसा
तुम्ही शाहू तुम्ही पेरियार
तुम्ही फूले तुम्ही कबीर
तुम भीमराव सर छोटूराम
तुम अंसारी तुम भाऊ पाटिल
तुम दिनाभाना,तुम कांशीराम
तुम खापर्डे की बात करो

तुम बनो यथार्थ, सच का दर्पण
महापुरुष साहित्य की बात करो
संकल्प लो आज अभी से तुम
ना फसोगे तुम आडम्बर में
अपने पुरखे,महापुरुषों को
ही रखेंगे सिर्फ अब घर मे
तुम बात करो हक अवसर की
तुम अधिकारों की बात करो
जिससे मिलते हैं हक सारे
उस संविधान की बात करो
तुम बनो यथार्थ, सच का दर्पण
महापुरुष साहित्य की बात करो

तेरी शिक्षा तेरे ये चमन

तेरी शिक्षा, तेरे ये चमन
तेरे तालिमगार तेरा है वतन हो हो
तेरी शिक्षा तेरे ये चमन
तेरे तालिमगार तेरा है वतन
पहले चमन लगाकर
भारत को है महकाया
घर घर बांटी शिक्षा
ज्ञान को है चमकाया
ज्ञान को है चमकाया
तेरे ज्ञान के दम पर ही
आया है ये फन
ेरी शिक्षा, तेरे ये चमन
ेरे तालिमगार तेरा है वतन
हो हो हो तेरी शिक्षा, तेरे हैं चमन
तेरे तालिमगार तेरा है वतन
सत्य शोधक समाज को तूने बनाया
छुड़वाई कुरीति और सत्य है दिखाया
मिले हर नारी को शिक्षा
मिले हर नारी को शिक्षा किये ऐसे जतन
किये ऐसे जतन
तेरी शिक्षा, तेरे ये चमन
तेरे तालिमगार तेरा है वतन
आजादी का रास्ता पिछड़ों को है दिखाया
दोस्त और दुश्मन का सबको बोध कराया
आत्मसात गुलामी का गुलामो को कराया
इस अभियान ने तेरे जगाया स्वाभिमान
स्वाभिमान को पाकर जागा है जन जन
जागा है जन जन
तेरी शिक्षा तेरे हैं चमन
तेरे तालिमगार तेरे हैं हम हो हो
तेरी शिक्षा तेरे हैं चमन
तेरे तालिमगार तेरे हैं हम

भारत का संविधान

हर नागरिक को समझे जो समान है
जो सबको देता इज्जत और सम्मान है
वो भारत का संविधान है ,संविधान है
हर नागरिक को समझे एक समान है
जो देता सबको अवसर एक समान है
वो भारत का संविधान है , संविधान है
सबको इज्जत सबको रोटी
सबको अवसर सबको कोठी
पूरा भारत है हम सबका
अपनी संपदा अपनी खेती
भारत की जो भी है धरोहर
सबका हक उसपे है बराबर
जो सबकी बढ़ाये शान है
जो सबकी बढ़ाये शान है
वो भारत का संविधान है, संविधान है
हर नागरिक को समझे जो समान है
जो सबको देता इज्जत और सम्मान है
जो सबका भाग्य विधाता
जो दे हक सबको सारे
छुपी जिसमे सबकी किस्मत
हक सबके लिए हकूमत
चाहे कोई सीएम-पीएम
चाहे कोई राष्ट्रपति
अवसर सबके समान है
जो समता की पहचान है
वो भारत का संविधान है, संविधान है
हर नागरिक को समझे जो समान है
जो सबको देता इज्जत और सम्मान है

कथा-कहानी मंच

पलायन

प्रो. नामदेव

जन्म : 07 अगस्त 1971

शिक्षा : पीएच-डी, जेएनयू

संप्रति : प्रोफेसर-हिंदी, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं अध्यक्ष, दलित लेखक संघ

पुस्तक: (1) भारतीय मुसलमान : हिन्दी उपन्यासों के आईने में -2009 (2) दलित चेतना और स्त्री विमर्श, 2009 (3) जोतिबा फुले : सामाजिक क्रांति के अग्रदूत-2012 (4) पर्यावरण प्रदूषण : समाज, साहित्य और संस्कृति-2012 (5) आलोचना की तीसरी परंपरा और डॉ.जयप्रकाश कर्दम-2014 (6) स्त्री स्वर : अतीत और वर्तमान-2019 (7) छप्पर की दुनिया:मूल्यांकन और अवदान-2020इ(8) साझेदारी के पक्ष में हिंदी कथा साहित्य-2020 (9) 21वीं सदी की 21 श्रेष्ठ दलित कहानियां-2022 (10) न समझे जाने का दर्द (कविता संग्रह)-2020

संपर्क namdevkmcdelhi@gmail.com

नागा दस साल के बाद अपने परिवार के साथ गांव गया था और महीना भर रहकर शहर लौट आया था। वापस जाते समय जैसे-जैसे गांव के लोग, रिश्तेदार, खेत-खलिहान, बाग-बगीचे पीछे छूटते जा रहे थे, उसमें एक अजीब-सी बेचौनी अकुलाहट उठती जा रही थी। बचपन की स्मृति में शामिल चेहरे, घटनाएं कभी नजर आतीं, तो कभी धुँधली हो उठीं। कई चेहरे अब वृद्धावस्था की कठोर लकीरों में तब्दील हो चुके थे और कई चेहरे अतीत हो चुके थे। जैसे-जैसे गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी, तेरह साल का नागा का किशोर मन यादों की गहरी गुफाओं में भटकता जा रहा था।

बचपन की स्मृति में शामिल चेहरे, घटनाएं कभी नजर आतीं, तो कभी धुँधली हो उठीं। कई चेहरे अब वृद्धावस्था की कठोर लकीरों में तब्दील हो चुके थे और कई चेहरे अतीत हो चुके थे। जैसे-जैसे गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी, तेरह साल का नागा का किशोर मन यादों की गहरी गुफाओं में भटकता जा रहा था।

नागा का प्रारंभिक बचपन उत्तरी बिहार के एक अत्यंत पिछड़े गांव में बीता था। गांव क्या था, सड़क के दोनों किनारों पर 20-30 कच्चे घरों की कतारें थीं।

यह गांव चमारटोली के नाम से जाना जाता था, क्योंकि यहां चर्मकारों की आबादी थी। इस गांव के सभी चर्मकार दलित कहीं और से विस्थापित होकर यहां बस गये थे। गांव की जमीन 'परती' कहलाती थी। नागा की गलेश के बलिया से वे यहां रहने आये थे। छोटे-छोटे कच्चे घर जो मिट्टी की दीवारों और छप्पर से बने थे। दूसरे के घर में क्या हो रहा है, साफ तौर से सुनाई देता था। गांव का प्राकृतिक वातावरण काफी मनमोहक था। आबादी कम होने और शौच इत्यादि नित्यकर्म के लिए लोगों के खेतों की ओर जाने के कारण गांव में स्वच्छता बनी रहती थी। गर्मी के दिनों में तो गांव बिलकुल ही साफ रहता था।

इस गांव के दलितों के घरों की हालत अत्यन्त दयनीय थी। नागा का

परिवार भी दलित त्रासदी से मुक्त नहीं था। कई बार घर में भूखे रहने की नौबत आ जाती थी। उसकी मां खेतों में जाकर मजदूरी और दादी गांव में जाकर घरों में दाई का काम करती थी। 10 वीं तक शिक्षित उसके पिता भी दिनभर काम की खोज में यहां-वहां भटकते। कभी बोझा ढोने का काम मिलता था, तो कभी क्रियाकर्म और विवाह समारोह में बाजा बजाने का, खेत में फसल काटने का। इस तरह घर का खर्च बड़ी मुश्किल से चल पाता था। नागा के बड़े चाचा मरे हुए जानवरों को लाकर उनकी खाल उतारकर बेचते थे और मांस को पकाकर घर में खाया जाता था। मरे हुए जानवरों की कलेजी को पकाकर ताया और दादी नागा को खाने के लिए देती, तो वह बड़े चाव से खाता। गांव के बच्चे दिनभर चूहे, कबूतर मारने में व्यस्त रहते।

गांव और स्कूल के रास्ते में श्मशान पड़ता था। उसके आस-पास ठाकुरों, ब्राह्मणों, यादवों के आम-लीची के घने बगीचे थे, जहां बच्चे आम-लीची चुराकर खाते थे या मटर के खेतों से मटर के हरे पत्ते तोड़कर उनमें नमक-मिर्च लगाकर खाते। चूहों, कबूतरों को भी शौक से खाया जाता। इस तरह बच्चे अपने घरों में भोजन की किल्लत को दूर करते थे। शिक्षा के प्रति दलितों में निरीह उदासीनता व्याप्त थी। बच्चे स्कूल जाने से कतराते थे। उनका मन बाग-बगीचों, खेत-खलिहानों में लकड़ियां चुनने में ज्यादा रमता, जो घर में ईंधन के काम आती थीं।

आमतौर से गांव के दलित भूमिहीन थे या जिनके पास जमीन के छोटे टुकड़े थे, वह बंजर थी, अतः साग-सब्जी, दाल, अनाज की कमी बनी रहती। ऐसे में बरसात कुछ राहत देती थी। बारिश के मौसम में धान के खेतों, पोखरों में जाकर मछलियां पकड़ी जाती, जो कई दिनों तक भोजन के काम आतीं। अनाज के नाम पर मकई, कोदो, ज्वार, बाजरा थे, जिनको मन मारकर खाना पड़ता था। नागा को अब भी याद है मकई और कोदो के नमकीन भात का बोरियत भरा स्वाद, जिसको कई-कई दिन तक लगातार खाना पड़ता था।

ताड़ी पीना, नाच-नौटंकी देखना मनोरंजन के मुख्य साधन थे। त्योहार के नाम पर श्रावणी पूजा का विशेष महत्व था। इस दिन सुअर की बलि दी जाती। गांव के पश्चिमी छोर पर नीम के पेड़ के नीचे काली माई का स्थान था। जहां रामनवमी के दिन कढ़ाई चढ़ती। पूरी और मीठे चावल बनते। चर्मकारों में इस दिन विशेष हलचल रहती। होली का आगमन तो गांव में नई जान फूंक देता। बांस की बनी पिचकारी, नारियल-छुहाड़े के टुकड़ों से बना प्रसाद, गोबर-मिट्टी के कीचड़ से होली खेलना बच्चों को बहुत लुभाता।

नागा के बड़े ताया बली राम गाने-बजाने में माहिर थे। उनके लोकगीत दूर-दूर तक के गांवों में पसन्द किये जाते थे। वे कबीरपंथी थे और होली के गीतों में कबीर के उपदेश मुख्य बिन्दु होते थे। एक बार बड़े ताया की मदमस्त टोली पर ठाकुरों ने हमला बोला था। होली का दिन खून की होली में बदल गया था। कई दलित घायल हुए, लेकिन कोई मरा नहीं। इन सबके बावजूद वलीराम ताया डरे नहीं, बल्कि कबीर की तरह अक्खड़ होकर अपनी बात ठाकुरों के सामने रखते थे। होली के दिन-दिनभर मदमस्त टोली के साथ बालक नागा इस गांव से उस गांव घूमता और शाम को कालीमाई के स्थान पर जाकर अपने परिवार के लिए सलामती मांगता।

आज वही नागा 14 वर्ष का होकर गांव में घूमने आया है। गांव का परिवेश पहले जैसा ही है। उसके साथ के लड़के-लड़कियों की शादी हो चुकी है। कई लड़कियों तो मां तक बन चुकी है जो उससे बात करने से कतरा रही है। कई तो गुमसुम सी हो गयी है, जो कभी बेहद संचल हुआ करती थीं। पहले जैसे ही गांवों में न सड़क है, न बिजली, न पीने का स्वच्छ जल है. न स्वास्थ्य केंद्र और न स्कूल। है तो बस गांव में एक अजीब-सी उदासी, बुझे हुए चेहरे, तपेदिक के मरीज, पौष्टिक भोजन के अभाव से ग्रस्त जर्जर शरीर, कम बोलने वाले लोग।

नागा के बड़े ताया बली राम गाने-बजाने में माहिर थे। उनके लोकगीत दूर-दूर तक के गांवों में पसन्द किये जाते थे। वे कबीरपंथी थे और होली के गीतों में कबीर के उपदेश मुख्य बिन्दु होते थे। एक बार बड़े ताया की मदमस्त टोली पर ठाकुरों ने हमला बोला था।

इस गांव के दलित बहुत मेहनती हैं, फिर भी उनको दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करने में तेरह बज जाते हैं। रोजगार के नाम पर आज भी गांव के चर्मकार ठाकुरों, ब्राह्मणों और यादवों के घरों-खेतों में बतौर बंधुआ मजदूर के रूप में काम करते हैं। पुश्तों से इनकी जमीन को ठाकुरों ने हड़प रखा है। अपनी जमीनों को छुड़ाना इन चर्मकारों के वश में नहीं है। शंकरलाल कहता है-'हम क्यों ठाकुर लोग से झगड़ा मोल लें। हमें तो इनकी ही दया पर जिन्दा रहना है। पानी में रह कर मगरमच्छ से भला कोई बैर करता है।'

नागा ने एक बार अपने घर में ठाकुरों से जमीन छुड़वाने की बात छेड़ी, तो उसके पिता और माँ इतने डर गये कि दिल्ली जैसे शहर में भी उनको ठाकुर लोग मारने आ जायेंगे। यह सच्चाई पूरे गांव की है। नागा बचपन में देखता था कि कैसे कोई ठाकुर या ब्राह्मण बच्चा आता, तो गांव के लोग उसको नमस्कार करते और वह बच्चा, लोगों को तू या नाम लेकर अशोभनीय बर्ताव करता। उस वक्त बालक नागा की चेतना में यह जातीय भेदभाव समझ से परे था। नागा के गांव में आये दिन अशोभनीय बर्ताव ठाकुरों द्वारा किया जाता।

विकरम राम, जिनकी उम्र पचपन की रही होगी, एक सीधे-साधे पारिवारिक आदमी थे। ठाकुरों की ज्यादतियों को सहना और खामोश रहना उनकी आदत में सुमार हो चुका था। ठाकुर अनिरूद्ध सिंह का बेटा उदय सिंह, जो लगभग 22 साल का रहा होगा, वह एकदम दुर्जन और घमण्डी था।

संयोग से हररंगी राम पहलवानी करते थे। मजबूत कद-काठी के थे। उनकी प्रबल धारणा थी कि स्वस्थ शरीर का व्यक्ति ही अपनी और दूसरे की रक्षा कर सकता है, खासतौर से गांव के चर्मकारों को तो शारीरिक तौर पर मजबूत होना ही चाहिए। वे दलित बच्चों को पहलवानी सिखाते थे। हररंगी राम ने भी पलटकर उदय सिंह पर जबरदस्त लात-घूंसे बरसा दिए।

एक बार विकरम राम सावन के महीने में बारिश से अपने परिवार को बचाने के लिए अपने घर का छप्पर बांध रहे थे, तभी ठाकुर उदय सिंह वहाँ आकर उसका छप्पर फाड़ डालता है और वहां पड़े बॉस के डंडों से उन पर प्रहार और गालियों की बौछार करता है। वह कहता है- 'साले चमार घर में रहेंगे, हमारे खेतों में काम नहीं करेंगे। हमारे खेत में अनाज बारिश में भीग रहे है और यह मादरजात अपने छप्पर की मरम्मत कर रहा है। जब से कांग्रेस सरकार बनी है. इन कमीनों की आवाजें बुलन्द होने लगी है।'

असलियत में 1980 के आस-पास गांव में दलितों के घर हेतु सरकार द्वारा इंदिरा आवास योजना शुरू की गयी थी, जिससे कुछेक दलित परिवार लाभान्वित हुए। सरकार द्वारा दलित सशक्तिकरण के लिये उठाया गया यह कदम ठाकुरों की आंखों में किरकरी बन गया था। इसलिए उदय सिंह इंदिरा सरकार को कोसता है।

बहरहाल, उदय सिंह की इस करतूत को गांव के ही चर्मकार हररंगी राम देख रहे थे, उन्होंने प्रतिकार किया-बाबू साहब आप अपनी जुबान को लगाम दो! विकरम तुम्हारे बाप की उम्र के हैं। लेकिन ऐसा लगता था मानो जैसे उदय सिंह की सद्बुद्धि को ग्रहण लग गया हो, उसने हररंगी राम का भी कॉलर पकड़ लिया।

संयोग से हररंगी राम पहलवानी करते थे। मजबूत कद-काठी के थे। उनकी प्रबल धारणा थी कि स्वस्थ शरीर का व्यक्ति ही अपनी और दूसरे की रक्षा कर सकता है, खासतौर से गांव के चर्मकारों को तो शारीरिक तौर पर मजबूत होना ही चाहिए। वे दलित बच्चों को पहलवानी सिखाते थे। हररंगी राम ने भी पलटकर उदय सिंह पर जबरदस्त लात-घूंसे बरसा दिए। इसको देख कर गांव के कुछ दलित नौजवानों का खून खौल उठा और उन्होंने भी उदय सिंह पर लात-घूंसे जड़ दिये। जान बचाकर किसी तरह उदय सिंह भागा, किंतु इस घटना के बाद गांव के दलित चर्मकारों को एक अनहोनी का भय सताने लगा, हालांकि वे इसके अभ्यस्त थे।

सूर्यास्त होते ही यह भय वास्तविकता में बदल गया। विकरम राम, हररंगी राम के साथ-साथ अन्य दलितों के घरों में ठाकुरों ने आग लगा दी। गांव में चीख-पुकार मच गयी। अछूत कहे जाने वाले चर्मकार अपनी विवशता पर रो रहे थे और ठाकुर रह-रहकर यह कहकर ठहाके लगा रहे थे, रोओ सालों, कुत्ते चले

थे हाथी से लड़ने।'

ठाकुरों का यह तांडव यहीं तक नहीं चला। कई दिनों, हफ्तों, महीनों के दरम्यान दलितों के छोटे-छोटे खेतों (जिनमें अधिकांश बैटाई पर थे) में आग लगा दी गयी। उन पर खेतों में शौच करने पर पाबन्दी लगा दी गई। गांव की जवान-बूढ़ी दलित औरतों का शौच के लिए बाहर जाना मुश्किल हो गया। कई चर्मकारों की जमीन पर ठाकुरों ने कहीं जबरन, तो कहीं ब्लैकमेलिंग से कब्जा कर लिया। दलित औरतों के साथ बलात् दुष्कर्म किये जाने की घटनाएं घटने लगीं। आये दिन दलित पुरुषों को गांव से बाहर ठाकुरों द्वारा मारा-पीटा जाने लगा। उपेक्षाओं और प्रताडनाओं में बढ़ोतरी हो गयी। नागा के पिता के साथ गांव के दो-तीन दलित लड़के जब हाई स्कूल की पढ़ाई करते थे उस समय भी वहां के ब्राह्मण और ठाकुर जाति के अध्यापक इन लोगों पर ताना कसते थे कि 'चमार सियार पढ़कर क्या करोगे, वकील, कलक्टर बनोगे, चलो-चलो खेत में हल चलाओ।'

दलितों के विकास के लिए जो सरकारी योजनाएं शुरू की गई थीं, सिंचाई के लिए ट्यूबवेल, बैलगाड़ी, मुर्गी पालन इत्यादि सभी को ठाकुर-ब्राह्मण ने दलितों को बेवकूफ बना कर हड़प लिया। इनके समस्त विकास के साधनों को इन बर्बर जातियों के लोगों ने अपने नाम करा लिया। ठाकुरों के इन संगीन अपराधों से दलितों का खून तो खौलता था, लेकिन सामूहिक एकता न होने और अन्यत्र कहीं से मदद न मिल सकने के कारण भी वे लाचार थे। थाने जाने पर समाज के रक्षक दलितों को ही पीटते थे, थोनेदार भी अपनी ऊंची जाति के होने के दंभ से पीड़ित थे, जिनको वंश परंपरा और जातीय गौरव के बेवकूफी भरे चिन्तन में दलितों के प्रति सिर्फ नफरत करना सिखाया गया था। झूठी शान और जातीय गौरव से अभिभूत ठाकुरों की ज्यादतियों के शिकार थे नागा के गांव के दलित।

गांव की स्थिति ऐसी थी कि दलितों को ठाकुरों ने जीने के हर अधिकार से बेदखल कर दिया। उन्होंने अपने घरों-खेतों में काम देना बन्द कर दिया। पहले से ही दरिद्र-दलित परिवार भूखे मरने लगे। कई बच्चे भूख से काल के अकाल ग्रास बन गये। विधवा मंगली अपने एक साल के दूध पीते बच्चे को बीमारी से अपनी आंखों के सामने मरते देखने के लिए विवश थी। एक ठाकुर ने मदद के नाम पर उसकी अस्मत से खिलवाड़ कर उसको पुनः गर्भवती बना दिया। भेद खुलने और बदनामी के डर से उसने गर्भवती मंगली को जहर देकर मरवा दिया। गांव की इन्हीं परिस्थितियों में अधिकांश दलित रोजी-रोटी कमाने और अपनी अस्मिता बनाये रखने के लिए असम बंगाल पंजाब हरियाणा बम्बई या दिल्ली शहरों में पलायन कर गये। गांवों से पलायन करने वालों में नागा के पिता भी शामिल थे।

गांव से शहर की ओर रुख करने वाले दलितों में से अधिकांश एक नये दलदल में धंसते नजर आये। यहां सामन्ती व्यवस्था का सीधा हमला तो नहीं था. लेकिन पूंजीपति व्यवस्था में वही सामन्ती सोच वाले लोग थे। आसमान से गिरे खजूर में अटके वाला मुहावरा पलायनकर्ता दलितों की वास्तविकता बन गया। गांव में जाति और वर्ण के कारण शोषित थे, तो शहर में जाति, वर्ग, अशिक्षा, पिछड़े परिवेश, गरीबी, कमजोर सामाजिक स्थिति के कारण शोषित होने लगे।

गांव से विस्थापित दलितों में से अधिकांश रिक्शा चलाने, बेलदारी, घिसाई, रेहड़ी लगाने जैसे कामों में लग गए। कुछ एक मजदूरी, मालीगिरी करते हुए बेमुश्किल सरकारी नौकर बन गये। निवास के लिए झुग्गी-झोपड़ियों से बनी मलिन गन्दी बस्तियां थीं। गांव से आये दलितों की जिंदगी खानाबदोश की-सी हो चली थी। नेतागण अपनी नेतागिरी चमकाने के लिए इनकी बस्तियों को तुड़वाकर कहीं और बसा देते। विस्थापितों की जिंदगी जी रहे थे दलित और इनके बच्चे। इनके बच्चे कभी साफ-सुथरे सुंदर घरों से घिरी पाश कालोनियों से गुजरते, तो इन्हें अपने जन्म, वंश, जाति पर पछतावा होता। कुंठा और तंगहाल भरी जिंदगी जीने को मजबूर थे दलित बच्चे।

नागा को वह वाकया याद आते ही राष्ट्रीय राजधानी से वितृष्णा होने लगती है। 9वीं कक्षा में जाट मास्टर

वह बोला-छीः छीः चूहड़े-चमार, भंगियों की बस्तियों से आते हो!' जाट मास्टर की इस अमानवीय हरकत से नागा और उसके एक सहपाठी की मुट्ठियाँ तन गयी थीं। चार-पांच दलित छात्र सहम गये थे।

महीप सिंह ने उससे पूछा, 'कहां से आते हो?' उसने जवाब दिया, 'मंगोलपुरी से।'

मास्टर वह बोला–छी: छी: चूहड़े–चमार, भंगियों की बस्तियों से आते हो!' जाट मास्टर की इस अमानवीय हरकत से नागा और उसके एक सहपाठी की मुट्ठियाँ तन गयी थीं। चार–पांच दलित छात्र सहम गये थे। क्लास के बाकी छात्र हंस रहे थे, जो जाट–गुर्जर जातियों के थे। नागा ने मास्टर से प्रतिशोध लेने की ठानी थी, लेकिन उसने उसका जवाब पढ़ाई में सक्रिय होकर दिया था।

स्लम बस्तियों में रहने वाले दलितों की जिंदगी से परेशान अकसर नागा यह कहता फिरता है कि 'अब हमारा गुजारा यहां भी नहीं, क्योंकि न्यायालय, सरकारें, नेतागण, उद्योगपति, पूंजीपति सभी हमारे रोजगार, पेशे, रोजी–रोटी, निवास–स्थल को छीनते जा रहे हैं। अब हमें कहीं और बसना पड़ेगा, लेकिन जायेंगे कहां, सब और जंगल राज है।

जिस तरह से ट्रेन एक दुनिया से निकाल कर दूसरी दुनिया में पहुंचा देती है, उसी तरह दलितों की मजबूरी, उनकी समस्याएँ, अस्मिता बोध उनका पलायन करवाती हैं। दलितों पर मंडराते इन्हीं समस्याओं और बुरी नजरों से रूबरू होने के कारण नागा के मन में यह भाव बारंबार आता है कि क्यों न इस देश पर ऐटम बम गिराकर पुन: एक नया समाज रचा जाए, जिसमें कोई अपनी जड़ों, मूल्यों और पहचान से विस्थापित या पलायित न हो। जाति व वर्ण व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक न हों और आज नागा को अपने सामने ऐसे असंख्य नागा दिखते हैं, जो विकास और बदलाव की चाहत में अपने गांव और संबंधियों का मोह त्याग कर शहरों की ओर कूच तो करते हैं, लेकिन शहरों में आकर कमरतोड़ मेहनत करने के बाद भी दुत्कारे जाते हैं, चाहे फिर वह देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जाने वाला महानगर मुम्बई ही क्यों न हो।

प्रतिवेदन

इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉन्फ्रेंस

(उपक्रम एमएसएस), अहमदाबाद, गुजरात

इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉफ्रेंस (उपक्रम एमएसएस), गुजरात के अंतर्गत 'बहुजन (दलित, आदिवासी व ओबीसी) साहित्य की रचना के लिए दर्शन की भूमिका' एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। रविवार, 15 जून 2025 को भारतीय शिक्षण समिति संघ, अहमदाबाद में मूलनिवासी बहुजन समाज एवं भोजपुरी प्रकाशन का सहयोग रहा। जिसमें दिल्ली से विशेष रूप से आमंत्रित वक्ता शीलबोधि (मुख्य संयोजक – इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉफ्रेंस) का गुजराती पुस्तकों के उपहार स्वरूप स्वागत किया गया। पूरे दिन चले शिविर में उन्होंने दलित, आदिवासी, ओबीसी साहित्य के साथ–साथ बहुजन–मूलनिवासी महापुरुषों के भाषण, उनके गूढ़ अर्थ, प्राचीन साहित्य आदि पर विस्तार से चर्चा की। लेखकों ने एक साहित्यकार को किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, अपने शब्दों को कैसे बुनना चाहिए, आदि पर विस्तृत व्याख्या की। कार्यक्रम का संचालन जयेश प्रियदर्शी ने किया और संचालन सुनील कुमार ने किया। स्वागत भाषण में कौशिक बोध ने कार्यक्रम के उद्देश्य और प्रथम संस्करण के प्रकाशन की जानकारी दी। सुनील कुमार ने मूलनिवासी सदस्यता संघ की कार्यप्रणाली और उसकी शाखाओं का परिचय दिया। कार्यक्रम में साहिल परमार, अशोक चावड़ा, गोविंद गोहिल, पुरूषोत्तम जादव, डॉ. धीरज वानकर, प्रकाश बैंकर, जीतू वाघेला, वर्षा सोलंकी, राकेश बौद्ध, तुषार कुमार आदि प्रसिद्ध लेखक उपस्थित थे।

कथा-कहानी मंच

अस्मिता लहू-लुहान

राजेश कुमार बोद्ध

जन्मतिथिः 26 फरवरी 1974

जन्मस्थानः गोरखपुर, उ. प्र.

अभिरूचिः लिखना व पढ़ना

सम्प्रतिः सामाजिक कार्यकर्ता

संपादकः प्रबुद्ध विमर्श ष हिन्दी मासिक पत्रिका

कृतियांः

1- सामाजिक क्रांति के नायक मा0 कांशीराम, 2- हमारे राष्ट्र गौरव दलित संतों का जीवन दर्शन, 3- तथागत बुद्ध कबीर और रैदास, 4- संत कबीरदास, 5- संत शिरोमणि गुरु रविदास और 15 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित,

पुरस्कार एवं सम्मानः-

9 से अधिक पुरस्कार व सम्मान देशभर से प्राप्त हुए

संपर्कः

Email:prabuddhvimarshgkp@gmail-com

वह बिल्कुल नंगी थी, चमन ठाकुर ने उसके बालों को कस कर पकड़ रखा था और चिल्ला-चिल्लाकर गांव गांव वालों को डरा धमका रहा था, 'देख लो! इस दुष्ट औरत की हालात, आगे भी अगर कोई गुर्राएगा, तो उसका भी यही हाल होगा।' ठाकुर के दोनों बॉडी-गार्ड बंदूक लिये सीना ताने इधर-उधर घूम रहे थे। मार खाकर राखी बेहाल हो गयी थी। उसका कसूर केवल इतना था कि वह अपने बेटे के लिए ठाकुर से लड़ गयी थीै बेटे तो सबके एक से होते हैं। सभी को अपने बेटा-बेटी प्यारी औलाद होती है।

ठाकुर के बेटे ने गलती की तो उसके बाप का फर्ज यही बनता था कि वह अपने बेटे को डॉटे या समझाए।

मगर ऐसा नहीं हुआ।

राखी का लड़का नौ साल का है और ठाकुर का लड़का आठ साल का था। दोनों एक ही कक्षा में संग-संग पढ़ने जाते थे। एक दिन ठाकुर के लड़के ने गाली दी और उसका कपड़ा फाड़ दिया तो राखी के बेटे ने भी गाली दे दी फिर आपस में दोनों लड़ पड़े, राखी का बेटा ठाकुर के बेटे पर भारी पड़ गया।

बात तो वहीं खत्म हो गयी थी, मगर राखी ठहरी नीची जाति की और नीची जाति के लोग ठाकुरों के मुंह लग जाएं यह कैसे संभव हो सकता है? उसी शाम को सारे के सारे ठाकुर नीची जाति पर टूट पड़े, उन्होंने मिल कर राखी को मारा-पीटा और अंत में उसे नंगा कर दिया।

लाठी और बंदूक के आगे किसकी हिम्मत थी जो ठाकुरों से मुकाबला करे, हालांकि पुलिस थाना भी पास में ही था पर वहा। भी ठाकुर भरे पड़े थे और ठाकुरों का जलवा था।

शाम तक यह खबर पूरे गांव गांव गांव में फैल गई कि राखी के बेटे ने ठाकुर परिवार पर हाथ उठाया। ये शब्द सुनकर ठाकुर बिरादरी के लोगों में खलबली मच गई। बिरादरी के नाम पर सबके मन में आक्रोश

पैदा हो गया।

दूसरे दिन शाम को गांव के ठाकुर राखी के घर पहुंचे और घर में घुस कर राखी को घसीटते हुए बाहर ले आये और उसकी पिटाई शुरू कर दिया। तत्पश्चात् उसे एक कमरे में बंद करके बाहर से ताला लगा दिया और चाबी लेकर ठाकुर चलें गये। राखी मदद के लिए चीखती चिल्लाती रही लेकिन उसकी पुकार सुनने वाला न था। उसके देवर-देवरानी तथा अन्य रिश्तेदार जो कि पड़ोस में रहते थे खामोशी से यह अत्याचार देखते रहे क्योंकि इन दबंग लोगों से भिड़ने की किसी में हिम्मत नहीं थी। गांव में ठाकुरों का इतना दबदबा था कि गांव का कोई भी व्यक्ति उनके विरोध में एक शब्द भी नहीं बोल सकता था।

अगले दिन राखी को उसी तरह कमरे में भूखा, प्यासा रखा गया। गांव के किसी भी व्यक्ति में इतनी हिम्मत न थी कि राखी को छुड़ा सकता और थाने में जाकर खबर करता।

चमन ठाकुर का बाई पास रोड पर एक बहुत बड़ा होटल था, जहां पर अक्सर पुलिस वाले खाना खाते थे। ठाकुर के पास चार फैक्टरी तथा सात कोटे की दुकान हैं इसलिए उसके पास धन की कमी भी नहीं थी, उसके खिलाफ बोलने की किसी में हिम्मत नहीं थी।

शाम को जैसे ही सूरज अपनी लालिमा लेकर लुप्त हुआ और आसमान ने अंधेरे की काली चादर ओढ़ी, चमन ठाकुर, श्याम सिंह और मुन्ना सिंह राखी के घर पहुंचे और उसे कमरे से बाहर निकालकर मारते-पीटते अपने घर ले जाने लगे। यह देख राखी का बच्चा और उसकी वृद्ध अंधी सास व देवरानी ठाकुर का पैर पकड़ कर गिड़गिड़ाने लगे और हमलावरों के सामने हाथ जोड़ कर राखी को छुड़ाने की कोशिश करने लगे परंतु वे लोग उसे गांव से बाहर एक सुनसान जगह पर ले गये और उसे मार-मार कर बेहोश कर दिया।

राखी को जब होश आया तो इन दरिंदों ने पुनः राखी को मारना-पीटना शुरू कर दिया। जब उससे संतुष्ट नहीं हुए तो उसे निर्वस्त्र कर डाला और फिर उसके साथ जबरदस्ती बारी-बारी से बलात्कार किया, रात भर हैवानियत का नंगा नाच नाचने के बाद इन आतताइयों ने राखी को पुनः उसके घर में लाकर क़ैद कर दिया।

राखी को खाना-पीना देने की किसी ने कोशिश भी की तो उन्हें भी पीटा गया जिससे गांव के लोग भयभीत हो गये। यही नहीं गांव वालों को इतना आतंकित कर दिया गया कि कोई भी व्यक्ति खाना-पीने देने तक की हिम्मत नहीं जुटा पाया। परिवार के अन्य लोगों को घर से निकलने पर पाबंदी लगा दी गई।

ठाकुर बिरादरी के लोग राखी पर अत्याचार करते रहे। राखी के देवर छोटे लाल को किसी तरह बाहर निकलने का मौका मिल गया, वह डरते-डरते थाना भवानीपुर जा पहुंचा और पुरी घटनाक्रम की जानकारी थाना प्रभारी को दी। सूचना पाकर थाना इंचार्ज और सब इंस्पेक्टर पुलिस बल के साथ घटनास्थल पर पहुंचे और ठाकुर परिवार को समझा-बुझा कर ताला खुलवा दिया। उन्होंने केवल इतना ही कहा कि इसे खाना-पानी तो दो वरना मर गई तो क्या होगा। अब और मार-पीट मत करना, इतना कहकर थाना इंचार्ज चल पड़े, पुलिस के जाते ही ठाकुरों ने उसे फिर क़ैद कर दिया। राखी का पक्ष लेने तथा थाने तक जाने की जुर्रत करने पर उसके देवर छोटे लाल को मारा-पीटा। इस घटना से सभी गांव वासी भयभीत हो गये।

रात में दबंग ठाकुर रोज की तरह फिर राखी को अपने घर ले गये और उसको अमानवीय यातनाएं दी। उसके साथ पुनः जबरदस्ती बलात्कार किया गया और उसके नाजुक अंगों पर सरियों से प्रहार किये। राखी के मुंह से गगन भेदी चीखें गंजने लगी, राखी पीड़ा से तड़पती कराहती रही और उनसे दया की भीख मांगती रही लेकिन उन जालिमों को उस पर दया नहीं आई।

राखी ने भागने का प्रयत्न भी किया मगर पकड़ी गयी। उसकी इस हरकत से ठाकुर आग बबुला हो उठा और एक बार फिर उस पर अत्याचार का अमानवीय कृत्य दोहराया गया। जुल्म की शिद्दत बर्दाश्त न कर पाने के कारण राखी पुनः बेहोश हो गयी। होश में आते-आते सुबह के नौ बज गये तब उसे मारते-पीटते ठाकुर उसके घर लाए और फिर घर के पास पहुंच

कर सैकड़ों लोगों के सामने उसे निर्वस्त्र कर दिया गया। उसके जिस्म पर पड़े काले-लाल निशान उन दरिंदों के जुल्म की कहानी बयान कर रहे थे। राखी की साड़ी से उसके हाथ पैर बांध दिये गये फिर उसके जिस्म पर मिट्टी का तेल डाला गया।

राखी की चीख उसकी देवरानी बिमला ने जो कि पड़ोस में रहती थी सुनी, वह अपने छत पर गयी। ठाकुरों के इरादे को देखकर वह छत पर से ही चीखने-चिल्लाने लगी, 'राखी को बचा लो। ये लोग उसे जलाकर मार डालेंगे।'

देवरानी बिमला की चीख पुकार सुनने पर भी किसी पर कोई असर न था। ठाकुर परिवार की औरतें अपनी-अपनी छतों से इस नग्न दृश्य को देख रही थीं। ठाकुर समुदाय के लोगों ने अपनी कार्य-प्रणाली को अंजाम देते हुए माचिस की तीली जलाई और राखी के ऊपर फेंक दिया।

जब अलाव की तरह धू-धू करके एक अबला नारी जलने लगी, तो ठाकुर परिवार उसे तड़पता देखकर ठहाका लगाने लगा। बिमला लगातार चीखें जा रही थी, उसकी चीख पुकार सुनकर अन्य देवरानी ममता और शीला भी दौड़ी, गांव के कुछ समाज सेवक भी दौड़े, लेकिन तब तक राखी का पूरा शरीर जल चुका था। कुछ ही क्षण में आंगन में राखी के शरीर का जला हुआ ढांचा पड़ा था, धुएं से उसका पूरा घर भर गया था।

राखी के ससुर अपनी जान बचाकर वहां से निकल गया और भवानीपुर थाना में जाकर उसने इस लोमहर्षक वारदात की सूचना दी।

इतना गंभीर घटना की सूचना पाकर थाना प्रभारी के कानों पर जूं तक नहीं रेंगी, वे दोपहर का लंच करने के बाद ही दो बजे घटनास्थल पर पहुंचे जबकि घटनास्थल थाने से महज एक किमी की दूरी पर ही था।

थाना प्रभारी के साथ घटना का सूत्रधार ठाकुर चमन सिंह भी आया था। पुलिस ने ठाकुर के घर से चादर मंगाई और लाश को बिना पंचनामे के उठाने का प्रयास करने लगी।

अब तक राखी की देवरानी बिमला का आक्रोश बढ़ गया था, वह घायल शेरनी फूलन देवी और झलकारी बाई का रूप धारण कर पुलिस प्रशासन के सामने आ गई और पुलिस को लाश उठाने पर रोक लगा दी।

काफी जिल्लत के बाद ही लाश उठाकर पोस्टमार्टम हाउस भेजी गयी। सारी घटना घटने के करीब कई घंटे के बाद पुलिस पहुंची, थाना प्रभारी और सीओ भी पहुंचे। तब तक दबंग ठाकुर गांव छोड़कर फरार हो चुके थे। लेकिन बेटे की सजा मां को इतनी बुरी मिलेगी यह तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

दूसरे दिन राखी की देवरानी बिमला के पति को भी ठाकुरों में मार-पीट कर अधमरा कर दिया और उसके घर की दीवार आंगन सब कुछ उजाड़ दिया। अब चमन सिंह ठाकुर राखी की देवरानी बिमला के सिर के बाल पकड़ कर पूरे गांव में नंगा करके घुमा रहा था।

राखी की देवरानी बिमला ने भी हिम्मत से जबाब दिया। अचानक उसने ठाकुर चमन सिंह का गला खूब कसकर पकड़ लिया।

ठाकुर जितना बिमला के हाथ को छुड़ाने की कोशिश करता, उतनी ही उसकी हथेली कसती जाती थी। एक बॉडी-गार्ड रिवाल्वर निकाल कर गोली चलाने ही जा रहा था तब तक बिमला ने अपनी पकड़ कस करके खींच दी।

चमन ठाकुर कटे पेड़ की तरह गिर पड़ा, उसकी जीभ और आंखे बाहर निकल आई। सबके सब ठाकुर की देखभाल में जुट गये थे, तभी अचानक बिमला ने बड़ी होशियारी के साथ बाडी-गार्ड की रिवाल्वर छीन ली। फिर वह कब बेहोश हुई कुछ पता ही नहीं चला।

जब उसे होश आया, तो वह भवानीपुर थाने में थी।

बिमला ने अपने जुल्म का बदला सात लोगों को खत्म करके ले लिया। बिमला अपनी राखी के बारे मे सोच रही थी तभी उसके मन में एक महामानव का ख्याल एवं उनके विचार आया, सोचने लगी कि 'बाबा साहब डॉ आंबेडकर जी ने ठीक ही कहा था कि जुल्म करने वाले से जुल्म सहने वाला ज्यादा गुनाहगार होता है।'

लाज शर्म तो जिस्म ढके रहने तक ही होती है। औरत नंगी हो या ढकी वह हमेशा सबला ही होती है।

कथा-कहानी मंच

गति मुक्ति

अनन्त आलोक

जन्म : 28 अक्तूबर 1974

शिक्षा : वाणिज्य स्नातक, शिक्षा स्नातक, स्नातकोत्तर हिंदी

संप्रति : हिमाचल सरकार में अध्यापन

पुस्तकें : तलाश (काव्य संग्रह-2011), यादो रे दिवे (सिरमौरी में हाइकु अनुवाद- 2016), मिस 420 ऑडियो उपन्यास-2021, पॉकेट एफ. एम. पर उपलब्ध एवं चर्चित:स्कैंडल पॉइंट और अन्य कहानियां-2022, प्रकाशित और चर्चा में

प्रसारण : दूरदर्शन, आकाशवाणी एवं प्राइवेट टीवी चौनल पर साक्षात्कार, कवितायेँ, गजलें,

सम्मान : सिरमौर कला संगम हिमाचल प्रदेश, हिमोत्कर्ष, शंखनाद मीडिया, नेपाल में युवा प्रतिभा सम्मान सहित स्पेक्ट्रम हिमाचल द्वारा सम्मान।

संपर्क : 941863377

जज साहब ने ज्यों ही मुकदमें का फैसला सुनाया, पब्लिक से खचाखच भरे कोर्ट रूम में खलबली मच गई। लोग बहस करने लगे! शोर होने लगा! वादी पक्ष को पूरा यकीन था कि फैसला उनके ही हक में होगा। लेकिन फैसला प्रतिवादी के पक्ष में आया तो सबके पांव तले से जमीन खिसक गई। ये कैसे हुआ! क्या हुआ! सब हैरान परेशान थे। वे तो सरेआम कहते फिरते थे 'सारी कायनात उनके हक में है जोरू का भाई भी उनके हक में तो फैसला भी उनके हक में! फैसले की क्या मजाल जो उनके हक में न आए!'

चारों खाने चित्त पड़ा जमींदार सज्जन सिंह को तो कोर्ट रूम में ही अटैक पड़ गया था। अस्सी साल का सज्जन सिंह इस केस को अपनी प्रतिष्ठा का सवाल बना बैठा था। अपने बेटे के नाम मुख्यारनामा करने के बावजूद वह खुद लाठी के सहारे कोर्ट पहुंचा था आज फैसला सुनने। सज्जन सिंह की टांगे बेशक कांपती थी खड़े होते हुए भी लेकिन वह अपनी लाठी जमीन पर ठकठकाते हुए कहता था, 'जब तक लाठी मेरे हाथ में है तब तक भैंस मेरी है!' उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि जिन लोगों को उसने ताउम्र अपने पांव की ठोकर पर रखा उन्हीं लोगों से एक दिन वह हार जायेगा! उसकी सांसे तेज-तेज भाग रही थीं। कान गर्म होकर लाल हो गए थे। उसके कानों में ऐसी आवाजें आ रही थीं जैसे असंख्य घोड़े किसी युद्ध के मैदान में दौड़ रहे हों और

सज्जन सिंह की टांगे बेशक कांपती थी खड़े होते हुए भी लेकिन वह अपनी लाठी जमीन पर ठकठकाते हुए कहता था, 'जब तक लाठी मेरे हाथ में है तब तक भैंस मेरी है!' उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि जिन लोगों को उसने ताउम्र अपने पांव की ठोकर पर रखा उन्हीं लोगों से एक दिन वह हार जायेगा!

जज ने फैसला सुनाने के बाद पुलिस से कहा था कि सज्जन सिंह के खिलाफ, रवि और उसके परिवार पर अत्याचार और जातिगत भेदभाव करने के जुर्म में एट्रोसिटी एक्ट के तहत एक नया मुकदमा दायर किया जाए।

वह मैदान में निहत्था और हारा हुआ जमीन पर पड़ा है। हिनहिनाते हुए घोड़े उसके चारों और घूम रहें हैं। पता नहीं कब ये घोड़े अपने अगले दोनों खुर उठा कर उसकी छाती पर धड़ाधड़ बरसा दें!

उसके खेमे में तो मानो आग ही लग गई। वे कोर्ट रूम में ही शोर मचाने लग गए। वर्धन और मेरे साले के चेहरे पर आश्चर्य मिश्रित खुशी थी। वे झूम जा रहे थे। एक दूसरे को बधाई दे रहे थे। एडवोकेट वर्धन ने मुझे गले लगकर बधाई दी। मेरी खुशी का तो मानो ठिकाना ही न था। मैं एडवोकेट के हाथ पकड़ कर चूम रहा था, ...बार-बार उसका धन्यवाद कर रहा था।

'आर्डर, आर्डर, आर्डर!' मुकदमे का फैसला आने के बाद कोर्ट रूम में हुई सुगबुगाहट को शोर में बदलते देख जज ने लकड़ी का मोटा-सा हथोड़ा दो-बार अपने टेबल पर मारते हुए कहा था।

हम बाहर निकल आये लेकिन वादी पक्ष के कान पर जूं तक न रेंगी। शोर बढ़ता देख जज ने तुरंत आदेश दिया, 'इंस्पेक्टर इन्हें बाहर ले जाइए' और खुद वे उठे और अपने स्थान पर पीछे की ओर घूमते हुए अपने चैम्बर में विलीन हो गए। इंस्पेक्टर मोहन ने तुरंत सभी को कोर्ट रूम से बाहर कर दिया। बहस करते हुए लोग बाहर चले आए और जमींदार सज्जन सिंह वहीं मुंह बाए एक कोने में बैठा रह गया। उसका किसी को ध्यान ही नहीं रहा। सभी जैसे पजल हो गये थे। सज्जन सिंह के अंदर अब इतनी शक्ति नहीं बची थी कि वह खुद उठ कर बाहर जाए। न ही वह किसी को पुकार पा रहा था। उसके कानों में जज के शब्द ऐसे गूंज रहे थे मानों कान में किसी ने खोलता तेल डाल दिया हो।

जज ने फैसला सुनाने के बाद पुलिस से कहा था कि सज्जन सिंह के खिलाफ, रवि और उसके परिवार पर अत्याचार और जातिगत भेदभाव करने के जुर्म में एट्रोसिटी एक्ट के तहत एक नया मुकदमा दायर किया जाए। उसे वही सुनाई दे रहा था बार-बार! उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया था। वह उठने की कोशिश करता और फिर नीचे गिर पड़ता। उधर कोर्ट से बाहर आकर भी लोगों का शोर कम न हुआ और वे और जोर से बहसबाजी करने लगे। इंस्पेक्टर ने प्यार से समझाते हुए सब से कहा, 'चलिए प्लीज् बाहर चलिए। आप लोग कोर्ट परिसर के अंदर किसी भी तरह का शोर-शराबा नहीं कर सकते! आप लोगों को जो भी बात करनी है। परिसर से बाहर जाकर कीजिये। ये कोर्ट है यहां शोर मचाना अलाऊ नहीं है। चलिए-चलिए प्लीज।'

लोग मानने को तैयार ही नहीं थे। कुछ लोग तो धक्का-मुक्की पर उतर आए थे अपने ही वकील के साथ। वहां मौजूद अधिकतर लोग फैसले की जम कर तारीफ कर रहे थे। यहां तक कि बाकी वकीलों ने भी इस फैसले की तारीफ की और एडवोकेट वर्धन को बधाई दी। वादी को पूरा विश्वास था कि फैलसा उन्हीं के हक में होगा इसलिए वे उस दिन अपने रिश्तेदारों को भी साथ लेकर आए थे। अब उनके चेहरों पर निराशा साफ देखी जा सकती थी। वे लोग आपस में बहसबाजी करते-करते आपस में ही उलझ पड़े थे। शोर इतना था कि कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। बस इतना समझ आ रहा था कि 'ऐसा कैसे हो सकता है यार... हम नहीं मानते ये फैसला...। अरे ये वकील ही बेकार है। मिल गया होगा साला... उनके साथ। हम तो पहले ही कर रहे थे कि...।' किसी ने बीच में कहा, 'जज को इतना तो देखना चाहिए कि क्या फैसला दिया जा रहा है। ऐसा होता है कहीं! हद की बात तो ये है यार कि जज भी हमारी ही कास्ट का है फिर भी...।' भीड़ में कोई फुसफुसाया तो दूसरे ने मुंह पर ऊंगली रखते हुए उसे चुप रहने का इशारा किया। उनका एडवोकेट जोसेफ उन्हें समझा रहा था, 'कोई बात नहीं आप लोग चिंता क्यों करते हो? हाई

कोर्ट में हम अपील करेंगे। हम चुप बैठने वाले नहीं है।' हालांकि वह जानता था कि जो भी फैसला दिया गया है, वह गलत नहीं है और गवाहों और सबूतों को मध्य नजर रखते हुए फैसला यही आना था। उसे यकीन था पहले से ही, लेकिन एडवोकेट है! उसका तो बिजनस ही यही है न! वो ये थोड़े ही कहेगा, 'बस अब हम कुछ नहीं कर सकते।' ऐसी बात तो कोई भी एडवोकेट एक ही स्थिति में कह सकता है जब क्लाइंट हाथ खड़े कर दे कि अब उसके पास कोई पैसा नहीं है। या उसे यकीन हो जाए कि अब क्लाइंट से पैसा निकलवाना मुश्किल है। मैंने अपने वकील के मुंशी को कह कर जजमेंट की कॉपी के लिए अप्लाई करवा दिया और इत्मीनान से अपनी गाड़ी की ओर रवाना होते हुए घर पर फोन कर फैसले की खुशखबरी पहुंचा दी। घर पर भी उत्सव-का-सा माहौल हो गया। चार बज चुके थे। हमारा केस लास्ट केस था। मुझे तो खुशी हो ही रही थी मेरा वकील भी इस फैसले से बहुत खुश था। वह तो पहले ही कहता था, 'ये अलग तरह का केस है और इसका फैसला भी एकदम अलग तरह का होगा देखियेगा!' हुआ भी वही।

आखिर सत्य की जीत हुई। मेरे मुंह से खुद-ब-खुद निकला 'सत्यमेव जयते। मैंने एक बार फिर अपने वकील के पास जाकर कन्फर्म किया, 'फैसला हमारे ही पक्ष में आया है न?' मुझे वाकई यकीन नहीं हो रहा था। खुशी के मारे मैं फूला नहीं समा रहा था कि इतनी बड़ी और स्ट्रोंग पार्टी सामने होते हुए। जिनके सारे रिश्तेदार भी उनके साथ। इतना ही नहीं उनके पास जो एडवोकेट था वो भी जिला का सबसे मशहूर और सबसे महंगा एडवोकेट था। उसके बाद भी फैसला हमारे हक में! मैंने कहा, 'एडवोकेट साहब मैं आपके जितना तो नहीं, लेकिन थोड़ा बहुत पढ़ा-लिखा तो हूं। मैंने सुना था कि कानून की किताब में भी ये लिखा हुआ है कि रिच गवर्न्स दा ला एंड ला गवर्न्स दा पूवर। मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा कि मेरे साथ न्याय हो गया। मुझे तो उन जमींदारों के एक होने से डर लग रहा था। मैं ठहरा एक छोटे से कद का आदमी। हालांकि मैं ये तो नहीं कहता कि गरीब हूं। समय और कुदरत ने सब कुछ दिया है मुझे। जरूरत लायक पैसा है। खेती है। अच्छे पढ़े-लिखे बच्चे हैं। अच्छी खासी नौकरी कर रहे हैं। सब बच्चे ठीक-ठाक हैं कोई समस्या नहीं। हालांकि जमीन और भी बहुत खरीदी है बच्चों ने लेकिन जिस जमीन को मैंने अपना खून-पसीना देकर संवारा है, उस जमीन को अपने हाथ से गवां देने का भय था बस! लेकिन अब मुझे यकीन हो गया कि अब मेरी जमीन कोई नहीं छीन सकता! मैं तो जज साहब का भी बहुत-बहुत आभार प्रकट करना चाहता हूं। क्या मैं उनसे मिल सकता हूं एडवोकेट साहब ?'

'नहीं रवि ऐसा नहीं होता। जज साहब तो कितने ही लोगों के हक में फैसला देतें हैं दिन भर। तो क्या वे सभी से मिलते रहेंगें? फिर अपना काम कब करेंगे? आपके जैसे ओर भी कितने लोग है जो परेशान हैं। जिनके साथ अन्याय हुआ है। उनके साथ भी तो न्याय करना है न उन्हें। वैसे भी न्यायधीश की अपनी एक गोपनीयता होती है। वे आम लोगों से नहीं मिलते, मिलेंगे तो न्याय करने में परेशानी न आए इसलिए ऐसा होता है।' एडवोकेट वर्धन ने मेरी जिज्ञासा को शांत करते हुए कहा।

उन्होंने इस फैसले पर खुशी जाहिर करते हुए एक बार फिर कहा 'मेरी वकालत की जिंदगी में ये पहला ऐसा केस था जो अजीब तरह का तो था ही बहुत पेचीदा भी था। मुझे यकीन है कि जज साहब के सामने भी इस तरह का पहला केस होगा ये। उन्होंने

आखिर सत्य की जीत हुई। मेरे मुंह से खुद-ब-खुद निकला 'सत्यमेव जयते। मैंने एक बार फिर अपने वकील के पास जाकर कन्फर्म किया, 'फैसला हमारे ही पक्ष में आया है न?' मुझे वाकई यकीन नहीं हो रहा था। खुशी के मारे मैं फूला नहीं समा रहा था कि इतनी बड़ी और स्ट्रोंग पार्टी सामने होते हुए। जिनके सारे रिश्तेदार भी उनके साथ। इतना ही नहीं उनके पास जो एडवोकेट था वो भी जिला का सबसे मशहूर और सबसे महंगा एडवोकेट था।

एकदम सही और न्यायोचित फैसला दिया है। वाकई, आज असल में मेरा भी कालर खड़ा हो गया है गर्व से। ये सही है कि हर एडवोकेट के पास जो भी केस आता है वह उसे ले लेता है क्योंकि उसका पेशा है ये। सही-गलत देखेगा तो खायेगा क्या? सही-गलत तो कोर्ट को देखना है न! बेशक हर केस से एडवोकेट को पैसा जरूर मिल जाता है, पर मन की शांति और संतुष्टि तो तब ही मिलती है जब वह किसी के साथ न्याय कर पाता है। न्याय पर आधारित जो भी फैसला होता है उस पर न तो एडवोकेट को और न ही जज को कभी कोई पछतावा होता है।

एडवोकेट का घर मेरे घर के पास ही था इसलिए मैंने कहा, 'आज आप अपनी गाड़ी यहीं पार्क कर दीजिये और मेरे साथ ही चलिए। कल भी आपको कोई लिफ्ट मिल ही जाएगी आने के लिए। साथ चलेंगे तो कुछ और बातें हो जायेंगी और घर भी पहुंच जायेंगे।' एडवोकेट ने कहा, 'ओके! तो मैं अपनी गाड़ी एडवोकेट नीरज को दे देता हूं। उसके घर पर बहुत जगह है पार्किंग के लिए, कल ले आएगा कोर्ट।' थोड़ी देर बाद हम बातें करते हुए घर की और चल पड़े।

पीछे वाली सीट पर मेरा साला कपिल बैठा था। एडवोकेट ने उसके बारे में पूछा, 'कपिल इंट्रोवर्ट है शायद बहुत कम बोलता है। वह अब तक बस हां-न में सिर हिला रहा था और हूं-हां में ही बात कर रहा था जब से हमारे साथ गाड़ी में बैठा था।' एडवोकेट की बात सुनकर कपिल बोला, 'नहीं-नहीं भाई साहब ऐसी कोई बात नहीं। दरअसल मेरा भी कुछ ऐसा ही मामला है। मैं यही सोच रहा था कि अपना केस भी आपको दे दूं और आगे अपील कर दूं सुप्रीम कोर्ट में। बस इन्हीं विचारों में खोया था।"

कपिल ने बात शुरू करते हुए कहा तो मैंने जवाब दिया, 'हां-हां क्यों नहीं। जरूर कीजिये। एडवोकेट साहब अपना बेस्ट देकर आपको न्याय दिलाएंगे। आप जब चाहें इनके ऑफिस चले जाएं।' कपिल ने तुरंत एडवोकेट वर्धन का मोबाइल नंबर नोट कर लिया। 'जीजा जी, आपका केस एग्जेक्ट्ली था क्या? मुझे समझाएं जरा, रास्ता भी कट जाएगा और मुझे अपने केस के लिए भी कुछ हेल्प मिल जाए शायद।' कपिल ने पीछे से मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहा तो मेरा ध्यान भंग हुआ। 'हां! कपिल एडवोकेट साहब ने तो ये कहानी कई दफा सुनी है, जज साहब ने भी और अब आप भी सुन लो। मैं शुरू से सुनाता हूं, रास्ता लंबा है घर तक खत्म हो जायेगी।'

'जी, जीजा जी सुनाएं प्लीज्।' मैंने गाड़ी साइड में लगाई और एडवोकेट वर्धन से कहा, 'इससे आगे आप ड्राइविंग करें। मैं वैसे भी बूढ़ा आदमी और अपनी स्टोरी सुनाते वक्त कहीं ज्यादा इमोशनल हो गया और गाड़ी संभाल न पाया तो...। हमारा सबका फैसला हो जाएगा आज!' हल्की हंसी के साथ एडवोकेट वर्धन ड्राइवर सीट पर आ गया और मैं कंडक्टर सीट पर। वर्धन केवल मेरा एडवोकेट नहीं मेरा ही पड़ोसी भी है। वह मेरी ही उम्र का है और मेरे ही परिवार का है थोड़ा दूर का। उसने अब अपना पूरा ध्यान ड्राइविंग पर लगा दिया। हम लोग हाईवे पर आ गये थे। हमारे देखते ही देखते ये सड़क बनी थी। आज एन.एच हो गया। एकदम मखमल बरगा रोड। गाड़ी की बस सरऽऽ की आवाज आती थी। बाकी कोई आवाज नहीं! मैंने बताना शुरू किया, 'दरअसल हुआ यूं कि हम तीन भाई-बहन थे। एक मैं और दो बहनें। दोनों बहनें मुझ से बड़ी और सबसे छोटा मैं। इतना ही मुझे मालूम है। मेरे लिए वे ही मां-बाप, भाई-बहन सब कुछ थीं। मैं बहुत छोटा था तो मां-बाप नहीं रहे थे। कोई बीमारी आई थी, शायद प्लेग या कुछ ऐसा ही!... महामारी थी। कुल मिलाकर हमारे पूरे परिवार को निगल गई थी वह डायन। पता नहीं कैसे हम लोग बच गए, अपने गांव से भाग कर आए या भगाए गए ये भी नहीं मालूम!'

'ओह वैरी सेड!' कपिल बोला। 'तो सुनो, आगे मुझे बस इतना मालूम है कि हमारी देखभाल करने वाला एक शख्स था। हमारे जीजा। वह बड़ी बहन के साथ ही आ गए थे जब हम लोग अपने घर से आए थे। शादी ब्याह तो कोई हुआ नहीं था बस साथ रहने लगे, देखभाल करने लगे तो पति-पत्नी हो गए बड़ी बहन और जीजा जी। वह लंबे-तगड़े, जवान

हरियाणवी आदमी थे। खूब काम करते थे, खाते भी खूब थे। मुझे याद है एक बार बड़ी बहन ने खीर के साथ परांठे बनाये थे। खीर-परांठे जीजा को इतने स्वाद लगे कि खाने बैठे तो खाते-खाते उन्हें पता ही नहीं चला कि वे कब बीस परांठे खा गए! एक परांठे में कम से कम दो रोटियां को आटा तो लगता ही है। पंद्रह-बीस रोटियां तो उनके लिए आम बात थी। लेकिन काम भी खूब करते थे। मरे हुए बैल को यूं खींच लेते थे जैसे किसी बकरे को खींच रहे हों। भई कुछ भी हो उन्होंने हमें कभी किसी तरह की कोई तंगी नहीं आने दी, इतना मुझे मालूम है।'

'वाह! तब तो बड़े ही बहादुर थे आपके जीजा! उसके बाद क्या हुआ?' कपिल ने समर्थन किया और असल कहानी पर आने के लिए मुझे चेताया। 'हां यार वो तो थे। हां, तो .. हुआ यूं कि मैं थोड़ा बहुत पढ़ भी लिया था उनकी मेहरबानी से लेकिन जल्दी ही ये सब छुड़वा कर मुझे भी पुश्तैनी जंजाल में फंसा दिया गया! हां जंजाल ही तो था! हम जहां रहते थे वहां थोड़ी-सी जमीन थी। जीजा खेत में काम करते थे अच्छा काम चल रहा था। लेकिन दो आदमी काम करते तो और अच्छा चलता, इसलिए मुझे भी काम करना शुरू करना पड़ा। वहां भी इसी तरह के कुछ जमींदार थे उन्होंने ही जीजा-बहन और हम सब को वहां बसाया हुआ था अपनी जमीन पर। वे जीजा से मरे पशु उठवाते। जीजा ये काम नहीं करना चाहते थे

मुझे याद है एक बार बड़ी बहन ने खीर के साथ परांठे बनाये थे। खीर-परांठे जीजा को इतने स्वाद लगे कि खाने बैठे तो खाते-खाते उन्हें पता ही नहीं चला कि वे कब बीस परांठे खा गए! एक परांठे में कम से कम दो रोटियां को आटा तो लगता ही है। पंद्रह-बीस रोटियां तो उनके लिए आम बात थी। लेकिन काम भी खूब करते थे। मरे हुए बैल को यूं खींच लेते थे जैसे किसी बकरे को खींच रहे हों। भई कुछ भी हो उन्होंने हमें कभी किसी तरह की कोई तंगी नहीं आने दी, इतना मुझे मालूम है।'

लेकिन जमींदार कहते थे कि इसी लिए तो तुम्हें जमीन पर रखा है। ये काम करो वर्ना मारेंगे अलग और भगा भी देंगे यहां से! अब जाते भी तो कहां जाते! मैं उस समय बहुत छोटा था लेकिन जब कभी जीजा नहीं जा पाते तो वे लोग मुझे बुलाते, कोई भी पशु मरने पर। मुझे जाना पड़ता। छोटे-छोटे पशु तो मैं खींच लेता, लेकिन बड़ी गाय और बैल! मेरे लिए आफत थी! नन्हीं कमर पर रस्सी बांध कर जाता जोर लगाता। रोता, पेट में दर्द होता, गिरता फिर उठता। पर काम तो करना पड़ता वर्ना जमींदार के छोकरे मारते। कई बार तो जमींदार ने खुद बिहुल के डंडे से मेरी खूब पिटाई की थी, काम न हो पाने पर। मेरे हाथ कांप रहे थे जब पहली बार मैंने रांपी चलाई थी एक मरे हुए बछडू पर! उसकी आंखों की ओर देख कर मुझे रोनी आ गई थी! किसी हिरनी-सी उसकी काली-काली प्यारी आंखें, मानों उसकी मां ने उसकी आंखों में काजल के लंबे डोरे बना छोड़े हों। रोते-रोते उसकी खाल उतारी थी मैंने। बहुत प्यारा बछड़ा था वह, उसकी खाल उतारने के लिए मैं उसे जिस और पलटता वह उस और ही अपनी-नन्हीं टांगे पटक देता। उसके नन्हें-नन्हें खुर देख कर लगता था मानों उसने अपने पांव में काले रंग के खूबसूरत नए-नए बूट पहने हुए हों। उस रात मैं शाम को कुछ भी नहीं खा पाया था। भूखा ही सोने का प्रयास करता रहा लेकिन पूरी रात वही बछड़ा आंखों के आगे घूमता रहा। गांव वालों ने बताया था कि मालकिन उसे दूध नहीं देती थी। भूख से वह तीन महीने में ही मर गया। बछड़ा था न! इस लिए, बछड़ी होती तो इस लालच में खुशी से पालते कि आने वाले टाइम में ब्याएगी, दूध देगी। बछड़े का तो खर्च ही है बस। कितनी अजब बात है न कि आदमी हमेशा लड़का चाहता है कि उसके घर में पुत्र पैदा हो और गाय से उम्मीद करता है कि हमेशा बछड़ी पैदा हो। धीरे-धीरे मुझे आदत हो गई ये काम करने की, लेकिन बड़े पशु तो खींच ही नहीं पाता था। कोई हेल्प के लिए गाय की टांगों में बांधी रस्सी को भी हाथ न लगाता था। यहां तक कि

कई बार तो मुझे घर आकर अपनी बहन को बुलाकर ले जाना पड़ता। तब जाकर हम उस मरे हुए बड़े बैल या गाय को खींच कर गांव से दूर ले जा पाते। जिंदगी चलती रही धीरे-धीरे मैं थोड़ा और बड़ा हो गया। एक दिन वहां के जमींदारों के कुछ रिश्तेदार आए उनके घर। उन्होंने मुझे काम करते हुए देख लिया। बस फिर क्या था कहने लगे। हमारे साथ चलोगे? कहने क्या लगे जबरदस्ती मुझे ले जाने पर अड़ गए। आखिर हार कर जीजा को मुझे भेजना ही पड़ा। लेकिन एक समस्या थी कि मैं यहां अकेला कैसे रहूंगा। उन्होंने कहा, 'कोई बात नहीं कुछ दिन में कहीं से लड़के का ब्याह करवा दो फिर दोनों आ जाएं।' मुझे भी लगा कि शायद ये अच्छे इंसान हैं। काम तो करना ही है यहां भी वहां भी। आखिर बारह साल की अल्प अवस्था में मेरा ब्याह करवा दिया गया। हालांकि पत्नी मुझ से काफी बड़ी थी लेकिन उन्हें तो काम के लिए जरूरत थी न! और एक से भले दो। हम दोनों पति-पत्नी यहां नए गांव में आ गए। नया गांव यानी वही घर जहां हम लोग अब रहते हैं और जिस पर उन्हीं लोगों ने केस किया बाद में जो हमें यहां ले कर आए!'

'ओह! अच्छा! जिसका फैसला आया है आज।' कपिल ने जोड़ा।

'हां बिल्कुल वही! तो आगे हुआ यूं कि हम लोग आ तो गए। लेकिन रहें कहां! हमें रहने के लिए गांव से बहुत दूर, गांव के एकदम नीचे जंगल के बीच एक ओबरा दिया गया। जहां कभी भेड़-बकरियां चराने के लिए घुमंतू गडरिये आया करते थे। उन्हीं का बनाया गया एक छप्पर, टूटा फूटा जिसके भीतर से अनेक सांप-बिच्छू निकलते रहे थे कई सालों तक। वहां रहने का हुक्म हमें सुनाया गया। डर तो लगा लेकिन क्या करते! आ गए थे तो रहना पड़ा। हम दोनों मियां-बीबी दिनभर जमींदारों की बंधुआ मजदूरी करते और रात के अंधेरे में मिट्टी का गारा बनाकर उसकी लिपाई करते। तब जाकर कहीं हमने उस ओबरे को रहने लायक बनाया। जमींदार सज्जन सिंह ने कुछ जमीन हाथ के इशारे से बता दी कि इस पर तुम लोग काश्त करो और इसका जो भी मामला बनता है वह भी भरो, माल महकमे के पास। जमीन क्या थी जंगल था पूरा। जंगल था। घासणी थी। उसे रात को खोदकर खेत बनाए थे हमने। सज्जन सिंह के पास सैंकड़ो बीघा जमीन और जंगल था। शायद मामला देना मुश्किल हो रहा था। सो हमारे हिस्से में लगा दिया। कुछ तो कम हो। उसने आदेश दिया कि हमारे मरे हुए पशु खींचकर बाहर करने होंगे और उनकी खाल उतार कर हमारे। पांव के लिए जूते बनाने होंगे। उसका कहना था कि ये तुम लोगों का पुश्तैनी काम है और इसीलिए हमें यहां बसाया गया है!'

'बहुत बुरे हैं वो जमींदार, सच में ऐसे कैसे कोई किसी को फोर्स कर सकता है, ऐसा काम करने के लिए!' मैंने लंबी सांस भरते हुए कहा।

हां, यार जमाना ही बुरा था। कानून उनके हाथों में था। बड़े अफसर, सरकार सब उनका ही था। उनके पास धन था और हम जैसे गरीब तो बस गुलाम थे उनके। बंधुआ मजदूर थे। जैसे वे हुक्म करते हमें वैसा ही करना पड़ता। सच्चे जमींदार के ओबरे में आज भी कोई पशु यदि सुबह मरा हुआ मिले तो वे लोग तब तक अन्न ग्रहण नहीं करता जब तक कि मरा हुआ पशु ओबरे से बाहर न कर दिया जाए और उसे बाहर करने का काम किसका था? हम लोगों का। सुबह चाहे खाली पेट जाओ या खाना खा कर, चाहे बीमार हों, लाचार हों, मजबूर हों कोई घर पर न हो तो औरतों को भी ये काम करने के लिए मजबूर करते थे ये लोग। जो भी हो तब तक जमींदार तो रोटी नहीं खा सकता और ये पाप भी हमारे सर कि वे हमारे देर से आने की वजह से भूखे रहे। तो जाना पड़ता भागकर, दौड़कर, जैसे भी हो, जल्दी से जल्दी। अब तो हम लोगों में से बहुत कम लोग ये काम करते हैं और अब ये लोग मजबूर भी नहीं कर सकते। सब लोग कानून जानते हैं आज। लेकिन उस समय ये लोग दूर से आवाज लगाते थे। ओ फलाणा चमार! म्हारा बलद मर गया रे। एसी भार कोरदे म्हार खाणा था।' इसका मतलब है कि हमारा बैल मर गया है, इसे बाहर कर दे, हमें नाश्ता करना है। जब तक मरा पशु ओबरे से बाहर न हुआ तब तक तो नाश्ता नहीं कर सकते ये लोग। धर्म के खिलाफ है। किसी को

फोर्स करके उसका शोषण करना। उससे जबरदस्ती काम लेना। ये सब धर्म है इन लोगों के लिए। इसीलिए फलफूल रहे हैं ये लोग। एक बार तो हमारे एक रिश्तेदार दुर्गु ने अपने जमींदार के मुंह पर ही कह दिया था कि लो मैंने तुम्हारा बैल ओबरे से बाहर कर दिया है, अब खा लो।'

'अच्छा किया ऐसा ही कहना चाहिए। इतनी गंदी तरह से कोई आवाज़ देता है क्या? पागल साले!'

'हां ऐसे ही आवाज देते थे। कहीं-कहीं दूरदराज के गांवों में तो अब भी... जमींदार गाय को मां और बैल को पिता के सामान मानता है। ये अच्छी बात है, लेकिन एक बात समझ नहीं आई आज तक मुझे कि जिन्हें तुम मां-बाप मानते हो उनके चमड़े के जूते बनवाकर पहनते हो? ये कैसी मां और कैसा बाप? उनके मरने पर तुम तब तक अन्न ग्रहण नहीं करते जब तक उसे ओबरे से बाहर न कर दिया जाए और मरने पर उसी की खाल के जूते! छी! ठोंगी! साले!' ग्रामीण इलाकों में खासकर हिमाचल में आज भी ये मान्यता है कि जब तक मरे हुए पशु का चमड़ा न उतारा जाए और उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर चील-कौओं को न खिलाया जाए तब तक पशु की गति-मुक्ति नहीं होती और ये गति-मुक्ति करने की जिम्मेदारी हमारी। वो भी मुफ़्त में। इसलिए वे हम लोगों को बाध्य करते हैं ये काम करने के लिए। ज्यादती यहीं खत्म नहीं हो जाती, वह तो शुरू होती है यहां से। जब मैं उनके पशुओं की खाल उतार रहा होता तो वे चुपके से पेड़ पर चढ़कर या फिर जंगल में कहीं झाड़ियों में छुप-छुप कर देखते रहते थे कि क्या कर रहा है? कैसे कर रहा है? एक बार मैंने गाय का चपड़ा उतारा और उसके टुकड़े-टुकड़े करने लगा ताकि पक्षी और कुत्ते जल्दी से उसे निपटा दें और पूरे माहौल में बदबू न फैले। किसी ने चुपके से मुझे वो पीस करते हुए देख लिया और पेड़ से उतरकर भागा और सारे गांव में अफवा फैला दी कि मैं गाय का मांस घर ले जाने के लिए उसके टुकड़े कर रहा हूं। जबकि मेरे परिवार में तो कोई बकरे भी मांस खाने वाला नहीं था। उस समय तो हम मात्र दो थे पति-पत्नी! मैंने उनके पशु फैंकने से मना किया तो वे मुझे मारने दौड़े।'

'हां हो सकता है किसी भाई ने कभी ऐसा किया हो। कितने ही लोग तो करते हैं। साउथ में भी और जब फोरेन से कोई राष्ट्रपति या कोई अन्य वीआईपी आता है तो प्रशासन खुद ही सर्व करता है उन्हें! यहां से कितना ही बीफ तो एक्सपोर्ट होता है। कौन नहीं जानता। आगे सुनिए। मैं रहता तो सज्जन सिंह की जमीन पर था और पशु पूरे गांव के फेंकने पड़ते थे। सबके लिए जूते बना कर देने पड़ते थे। इसके बदले वे क्या देते थे; एक सोला आटा! और तीज-त्योहार पर हमें आदेश कि पका हुआ भोजन लेने के लिए सभी घरों में आना होगा, मांगने के लिए। उस समय खाने के लिए होता भी नहीं था? तो जाना पड़ता था। सारा दिन तो उनके मरे पशु फेंकने में और उनके खेतों में काम करने में निकल जाता था। उसके बदले हमें मिलता था; अपमान, झिड़कियां और कुछ किसी बात पर जवाब दे दिया तो मार भी। एक बार हमारे ही एक रिश्तेदार का पढ़ा-लिखा लड़का शादी के मौके पर जमींदार के मंजे पर क्या बैठ गया, उन्होंने उसे इतना मारा कि उसकी मौत हो गई। हमें जब कभी ब्याह-शादी में या त्योहार पर उनके द्वारा बुलाया जाता था न, तो पता है कहां बिठाया जाता था? दूर आंगन के किनारे पर। या खेत के एक कोने में। इतना ही नहीं गरमा-गरम दाल-सब्जी एक फुट ऊपर से फैंकी जाती थी पत्ते पर। चाय-पीने के लिए भी पत्ते लेकर आने होते थे! अगर कोई इंकार कर दे तो उसकी शामत। इतना ही नहीं वे अपने जूते ठीक करवाने खुद नहीं आते थे। आवाज देकर हमें ही बुलाते थे टूटे-जूते ले जाने के लिए और

जमींदार गाय को मां और बैल को पिता के सामान मानता है। ये अच्छी बात है, लेकिन एक बात समझ नहीं आई आज तक मुझे कि जिन्हें तुम मां-बाप मानते हो उनके चमड़े के जूते बनवाकर पहनते हो? ये कैसी मां और कैसा बाप?

फिर ठीक कर के उनके घर भी छोड़कर आने होते थे। उसके बाद भी ये व्यापार नहीं था कपिल, ये अहसान था कि उन्होंने हमें जमीन दी है। इसलिए उसके बदले काम करो और बदले में मिलता था बस वही सोला, गालियां और जिल्लत भरी जिंदगी। पैसा तो किसी के पास उस समय होता भी नहीं था देने के लिए और हो भी तो हमें कौन देगा?'

'सोला! ये क्या होता है जीजा जी?'

'हां कपिल सोला एक बर्तन होता था एक बड़े कटोरे के आकार का, बस उसमें डालकर थोड़ा बहुत अनाज दे देते थे। उसके लिए भी लाख नखरे देखने पड़ते थे उनके। दूर से डालते थे बेग में। आधा तो नीचे गिर जाया करता था। फिर कहते थे उठा लो, अनाज है। इसकी बेकद्री नहीं करनी चाहिए। आज हम इनके घरों की ओर देखते भी नहीं। न इन्हें ब्याह शादी में बुलाते हैं और न खुद जाते हैं, हालांकि अब इतना भेदभाव नहीं रहा। अब तो कई गांवों में मरे हुए पशु भी खुद फेंकने लगे हैं ठाकुर-पंडित! इसमें बुरा भी क्या है? जब आप लोग उनका घी-दूध खा रहे हो, उन्हें माता और पिता कहते हो, उनसे खेत में काम करवा रहे हो तो मरने के बाद कैसे वही गाय माता अछूत हो जाती है?'

मैं थोड़ा पर्सनल हो गया था। कपिल ने फिर याद दिलाया, 'फिर ये केस! मुकदमा ये क्या मामला है?' बिल्कुल ये ज्यादतियां, ये भेदभाव, ये शोषण और अत्याचार सब इसी केस से संबंध रखते हैं कपिल। इसीलिए सुना रहा हूं! केस का हुआ यूं कि ये सिलसिला मुसलसल चलता रहा। साल दर साल। इस बीच मेरी पत्नी को एक-एक कर आठ लड़के हो गए। बच्चे बड़े होने लगे तो खर्चे बढ़ने लगा। पत्नी की इच्छा थी कि बच्चों को स्कूल में पढ़ाया जाए। मेरे तो अधिकतर दिन जमींदारों की सेवा में जाया हो जाते थे। और वहां से कुछ मिलता नहीं था। पढ़ने के लिए कोपियां, किताबे, कपड़े-लत्ते कहां से जुटाता। लेकिन पत्नी का निश्चय दृढ़ था। उसकी की मेहनत से बच्चे इतने तो पढ़-लिख गए कि आज आराम से जिंदगी गुजार रहे हैं। सरकारी नौकरी कर रहे हैं। बिसनेस कर रहे हैं। आज सभी आराम से जी रहे हैं। मौज में हैं, अपना-अपना परिवार अच्छे से चला रहे हैं। उन्हीं की बदौलत आज ये केस जीत पाया हूं। केस का सारा पैसा बच्चे ही तो दे रहे हैं. मैं तो बस निमित मात्र हूं।'

'कुदरत की करामात देखिये कि इसी बीच एक ऐसा कानून आया कि काश्तकार जिन जमीनों पर काश्त कर रहे थे, जहां उनकी हैसियत सिर्फ मुजारे की थी वे उन जमीनों के मालिक हो गए। सरकार ने जमीनें हमारे नाम कर दीं।

'कुदरत की करामात देखिये कि इसी बीच एक ऐसा कानून आया कि काश्तकार जिन जमीनों पर काश्त कर रहे थे, जहां उनकी हैसियत सिर्फ मुजारे की थी वे उन जमीनों के मालिक हो गए। सरकार ने जमीनें हमारे नाम कर दीं। सरकार के हिसाब से हम लोगों ने कुछ पैसा जमा किया, बकाया मामला दिया और हम मुजारे से मालिक हो गए। मुझे भी दस बीघा जमीन मिल गई। ये हमारे लिए जहां खुशी का दिन था वहीं जमींदार सज्जन सिंह के लिए पछतावे और मातम का दिन। हालांकि वे लोग हम लोगों से अपने सारे काम उसी तरह करवाते रहे उसके बाद भी बरसों तक। हम लोग भी उनका एहसान मानकर काम किये जा रहे थे। बदले में जो भी आटा-सत्तू वे लोग देते हम स्वीकार करते लेकिन अब जमीन कमाने का शौक भी हो गया। बच्चों ने खूब मेहनत की और जमीन सोना उगलने लगी। हमारी जमीन में अदरक, मकई, गेहूं, टमाटर, लहसुन और धान की लहलहाती फसलें देख जमींदारों के कलेजे पर सांप लौटने लगे। पहले जितनी मेहनत से हम उनके लिए काम कर रहे थे, उससे दोगुनी मेहनत से अपने लिए करने लगे। अब मेरे साथ काम करने के लिए आठ जवान बेटे भी थे। अब छोटे बच्चे पढ़ रहे थे और बड़े नौकरी करने लगे थे। व्यस्तता के चलते जमींदारों के हेल्ले (सामूहिक श्रम) के काम तो छूट गए। अब हम लोगों पर सबसे अधिक भार यदि कोई रह गया था तो वह

था उनके मृत पशुओं की गति-मुक्ति, जिसे हमने भी अपनी नियति समझ लिया था। हम मान बैठे थे कि जिस तरह आदमी की गति-मुक्ति पंडों के हाथ से होती है वैसे ही पशुओं की हमारे हाथ से। गाय-माता उनकी और मुक्ति करें हम। बैल भी उनके पिता। हम अपनी माता की गति-मुक्ति तो करते ही थे उनकी माताओं और पिताओं की भी करनी होती थी। जब उन्होंने देखा कि ये तो हम से भी अधिक प्रोग्रेस करने लग पड़े हैं तो जमीन पर कब्जा करने के लिए आ धमके! इकठ्ठे होकर जमीन पर जबरदस्ती कब्जा करने के लिए ठंडे, तलवारें, गंडासे लेकर भिड़ गये। पर वे अपने मकसद में कामयाब न हो सके। पुलिस ने उन्हें वहां से खदेड़ दिया तो ये कहते हुए कोर्ट में केस कर दिया कि ये हमारी जमीन थी, है और रहेगी। ऊपर से जान से मार डालने की भी धमकियां दीं, जातिसूचक शब्दों से अपमान किया। उन्हें लग रहा था कि हम लोग डर जायेंगे और जमीन छोड़ देंगे, लेकिन ये उनकी भूल थी।'

कपिल ये पूरी कहानी अपने केस से मिलाकर देख रहा था। उसे भी समझ आ गया कि बिल्कुल यही तो हुआ है उसके साथ भी। उसने कहा हमारा केस भी सेम है हमारे साथ भी इसी तरह अन्याय हुआ है। अब मैं भी अपील करूंगा आपके केस का रेफ्फ़ेरेंस देकर। लेकिन ये केस किस तरह से खास हो गया था, आप लोगों की क्या मांग थी कोर्ट से, जिससे हक में फैसला दिया कोर्ट ने?'

कपिल, हुआ यूं कि आज की तारीख में सभी बच्चे कुदरत की मेहरबानी से अच्छे सेटल हैं। खूब कमा खा रहे हैं। सभी बेटों ने शहरों में प्लाट और फ्लैट्स ले रखे हैं। आनंद है। बेटों ने कहा है कि ऐसी जमीनें तो हम दस जगह और खरीद लें। लेकिन जिस बात के लिए सभी जमींदार हमें बदनाम करते हैं न! कि हम लोगों को मुफ्त में मिली है ये जगह! बस यही बात इस केस की असल जड़ है। मेरी कोर्ट से एक ही गुजारिश थी कि यदि मेरी और मेरी पत्नी की अस्सी साल की सेवा। उसके बाद मेरे छोटे-छोटे बच्चों की भी बीस-तीस साल की सेवा। वो भी ऐसी सेवा जिसे अमानवीय कहा जाएगा, जो इन लोगों ने डरा धमकाकर करवाई। वकील साहब बताएंगे शायद इसे अनड्यू इनफ्लूएंस कहते हैं!'

'बिल्कुल सही कहा रवि जी, एडवोकेट तो आप भी हो गए हो पांच साल के इस केस में।' एडवोकेट वर्धन ने पीछे देखे बिना स्टेरिंग घुमाते हुए कहा।

'यहां अमानवीय लफ़्ज बड़ी अहमियत रखता है! मेरी और मेरे पूरे परिवार की इतनी लंबी सेवा की क़ीमत दस बीघा जमीन भी नहीं बनती है, तो कोई बात नहीं। मैं तैयार हूं पूरी की पूरी जमीन इनके नाम करने को! लेकिन मेरी अस्सी साल की सेवा के बदले ये लोग मेरे परिवार की ऐसी ही सेवा पूरे परिवार सहित सिर्फ आठ दिन कर दें। मैं आज के नियम के अनुसार पूरी मजदूरी भी दूंगा और पूरी दस बीघा जमीन भी! यदि नहीं कर सकते तो दुबारा ये बात मत कहना कि तुम्हारी जमीन हमें मुफ़्त में मिली है। न ही एक इंच जमीन वापस लेने का ख्वाब देखना। बस इतनी-सी बात थी। इस बात को ये लोग कैसे मान लेते। इस तथाकथित ऊंच-नीच वाले समाज में छोटे न हो जाते ये लोग। बस, हाई कोर्ट ने भी फैसला हमारे हक में दे दिया। मैंने तो ये भी कहा कि यदि धर्म के हिसाब से ऋण की बात मानते हो। जिसमें कहा जाता है कि माता-पिता के ऋण से उऋण होने के लिए संतान उत्पन्न करनी होती है। इसी तरह बाकी के ऋणों से भी उऋण होना होता है। आप लोग भी तो हमारी इस सेवा के ऋणी हैं। धर्म में तो खूब विश्वास है न आप लोगों का? इस ऋण से तभी उऋण हो पायेंगे न जब आप भी हमारी या हमारे बच्चों की ऐसी ही सेवा करोगे। तभी आप लोगों की भी गति-मुक्ति हो पाएगी। चलो हमारी बात छोड़िये जिन पशुओं के दूध-घी खाया है आप लोगों ने उनके ऋण से कैसे उऋण होंगे बिना उनकी गति किये? और हम तो अब बिल्कुल न करेंगे इनके पशुओं की गति।'

'बिल्कुल सही और आपकी इसी बात से जज साहब भी बहुत खुश हुए थे जब आपने कठघरे में खड़े हो कर ये बात जोर देकर कही थी। अंत में, और एक बात कहते-कहते रो ही पड़े थे आप!" एडवोकेट वर्धन ने घर के पास गाड़ी को पार्क करते हुए कहा।

कपिल ने तालियां बजा दी 'वाह जीजा जी मान गए आपके दिमाग को।'

निरख-परख

सवालों के गुंजन से जूझते एक असली लघुकथाकार डॉ. पूरन सिंह

बलराम अग्रवाल

शिक्षा :
एम. ए., पी–एच. डी. (हिंदी)
अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा।

कृर्ति :
2 कहानी संग्रह, 7 लघुकथा संग्रह, आलोचना की 6 एवं बाल साहित्य की 15 पुस्तकें प्रकाशित।

संप्रति :
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के अन्तर्गत सीनियर फैलोशिप।

सम्मान व पुरस्कार :
'डॉ. राम कुमार वर्मा बाल नाटक सम्मान'–2023 उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से विभूषित

सम्पर्क : एफ–1703, आर जी रेजीडेंसी, सेक्टर 120,
नोएडा–201301 (उ.प्र.)
मोबाइल : 8826499115

पूरन सिंह हिंदी लघुकथा के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनकी विशेषता उनकी गहन और सम्यक् दृष्टि तथा कथन की स्पष्टता दोनों हैं। इन दिनों वे दलित साहित्य से भी गहरे जुड़े हैं; लेकिन उनकी अनेक लघुकथाओं में इकतरफा सोच की बजाय उनके स्वतंत्र स्वर को रेखांकित किया जा सकता है। उनकी रचनाएं अधिकतर मानवीय और मनोवैज्ञानिक धरातल पर स्थित रहती हैं। हिंदी के लगभग सभी स्तरीय पत्र–पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं प्रकाशित होती रही हैं। अभी तक उनके 7 कहानी संग्रह, 9 लघुकथा संग्रह तथा 2 कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कुछेक संकलनों का संपादन भी उन्होंने किया है। अनेक भारतीय भाषाओं में उनकी रचनाओं के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। यहां उनकी कुछ चुनिंदा लघुकथाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत है–

उनकी लघुकथा 'दरिद्र आदमी' आत्ममंथन और पश्चाताप की गहन संवेदना को दर्शाती है। इसमें कथानायक आलोक बाबू का अकेलापन उनके भोगवादी अतीत का प्रतिफल बनकर उभरता है। लघुकथा देह और प्रेम के अंतर को रेखांकित करती है–जहां देहासक्ति क्षणिक सुख देती है, वहीं सच्चा प्रेम आत्मा को तृप्त करता है। उम्र के लगभग अंतिम पड़ाव पर पहुंचे एकाकी आलोक बाबू की भावुकता यह स्पष्ट करती है कि बिना आत्मीयता के संबंध अंततः शून्यता ही उपजाते हैं। कथा की भाषा सहज है, लेकिन उसकी मारक संवेदना पाठक को भीतर तक झकझोरती है। यह लघुकथा एक चेतावनी है–कि जीवन में संबंधों की गहराई, मात्र भोग से नहीं, प्रेम से आती है।यह लघुकथा एक स्वस्थ मनोविश्लेषणात्मक विमर्श को आमंत्रित करती है।

लघुकथा 'वर्चस्व' जंगल के माध्यम से समाज की शक्ति–केंद्रित राजनीति और वर्चस्ववाद की मानसिकता को उजागर करती है। शेर

का बकरी के बच्चे से प्रेम प्राकृतिक पाशविक नियमों से ऊपर उठने का प्रतीक है, जबकि अन्य शेरों की क्रूरता उस सत्ता और श्रेणीबद्धता की पाशविक मानसिकता को व्यक्त करती है जो ताकतवरों को 'कमजोरों' से संबंध नहीं बनाने का नारा उछालती है, उनका हमदर्द नहीं बनने देती। शेरों द्वारा अपने ही साथी की हत्या दर्शाती है कि समूह का वर्चस्व बनाए रखने के लिए मानवीय भावना या नैतिकता कोई मायने नहीं रखती। यह कथा वर्गभेद, सत्ता-लोलुपता और सामूहिक अमानवीयता की गहरी आलोचना है, जो समाज को चिंतन के लिए विवश करती है। यह दिखाती है कि जब सत्ता स्वयं को असुरक्षित महसूस करती है, तो अपनों का ही शिकार करने से भी नहीं चूकती।

'मासूम श्रेया' में आधुनिकता और पारंपरिक मानसिकता का द्वंद्व उजागर हुआ है। श्रेया के माता-पिता सतही रूप से प्रगतिशील हैं, लेकिन गहरे में जातिगत पूर्वग्रह उनमें अब भी जीवित हैं। इसमें प्रश्न-प्रतिप्रश्न की शैली प्रयोग पूरन सिंह ने किया है। पिता के सवाल पर मासूम श्रेया का सीधा सवाल समाज के दोहरे मानदंडों पर तीखा प्रहार करता है। वह बताता है कि हमारी सोच तो आजाद दिखती है, पर जड़ें अब भी पुरातनता के खूंटों से बंधी हैं। इस लघुकथा का मारक अंत देखिए-

'खाने पर बुलाने के लिए अपने दोस्त से जाति पूछना जरूरी होता है क्या पापा?' प्यारी-सी बेटी ने अपने ब्राह्मण पापा से पूछ ही लिया था आखिर; और पापा उसके प्रश्न का उत्तर आज तक तो दे नहीं पाए।

'आज का एकलव्य' परंपरागत मानसिकता के विरुद्ध नयी पीढ़ी के प्रतिरोध की प्रतीक है। आज का एकलव्य शोषण और छल की परंपरा को चुनौती देता है। यह लघुकथा आधुनिक शोषित-दलित समाज में उभरी उस चेतना का संकेत देती है, जहां अब अंध-समर्पण नहीं, बल्कि जागरूक प्रश्न, विरोध और स्वाभिमान की प्रबल भावना प्रमुख है। यह लघुकथा व्यंग्य के माध्यम से सदियों की सत्ता-धूर्तताओं का पर्दाफाश करती है।

एक सवाल पूरन सिंह ने 'मासूम श्रेया' के माध्यम से उठाया था; दूसरा सवाल, सवाल नहीं समूचा विमर्श उन्होंने'बुद्धम् शरणम् गच्छामि' के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जातीय विद्वेष, आत्मग्लानि और नैतिक द्वंद्व को यह लघुकथा मार्मिक रूप से प्रस्तुत करती है। दिव्यांग का 'चौबे' होना इस कथा के 'मैं' पात्र की पूर्वाग्रह पोषित चेतना को झकझोर देता है। दिव्यांग के जिस हाथ को थामकर वह सहायतार्थ लिये जा रहा था, वही हाथ उसे 'जहरीला सांप' महसूस होता है और वह उसे झटक देता है। यथार्थ यह है कि 'मैं' स्वयं को बुद्धिस्ट कहता है, पर बुद्ध के मूल सिद्धांतों-करुणा, समता, मैत्री-का पालन नहीं करता। लघुकथा प्रश्न उठाती है-'अपने प्रति अतीत के दमन से उत्पन्न पीड़ा को हम वर्तमान में दूसरों के प्रति घृणा में बदलते हैं, या करुणा में? यही चयन हमारे असली या नकली होने की पहचान बनाता है। इन दो लघुकथाओं के माध्यम से पूरन सिंह ने सिद्ध किया है कि लघुकथाकार के रूप में वे इंसान पहले हैं, कुछ और बाद में।

'बाजारू लड़की' का कथानक किंचित अव्यहारिकता लिए हुए है तथापि यह पुलिसिया दुर्व्यवहार पर तीखा प्रहार करती है। यह कथा स्वयं कथाकार के सामने एक मौन प्रश्न बनकर खड़ी रह जाती है।

लघुकथा 'बॉडीगार्ड' स्त्री-सशक्तिकरण का ही नहीं, पितृ-सत्तात्मकता से बाहर आने की स्त्री-मुहिम का भी सशक्त उदाहरण है। सुभद्रा सिंह अपने भाई से परंपरागत सुरक्षा के स्थान पर आत्मनिर्भरता की मांग करती है। वह चाहती है कि उसे बचाया न जाए, बल्कि उसे खुद को और दूसरों को भी बचाने के योग्य बनाया जाए। कथा यह संदेश देती है कि रक्षा देने से बड़ा काम स्त्री को रक्षक बनाना है।

लघुकथा 'बट नॉट ह्यूमन' धार्मिक पहचान के पीछे छिपी मानवताविहीन खोखली एकता को बेनकाब करती है। लघुकथा के मुख्य पात्र 'मैं' द्वारा धार्मिक पहचान वाली एक तख्ती पर तत्संबंधी 'धर्म' के नीचे 'बट नॉट ह्यूमन' लिखना उसके प्रतिकात्मक विरोध को दर्शाता है। मसलन, 'आय एम हिन्दू' के नीचे वह 'बट नॉट ह्यूमन'लिख देता है। ऐसा करके वह संकेत करता है कि

सब लोग 'हिन्दू', 'मुस्लिम', 'सिख' और 'ईसाई' तो हैं, मनुष्य नहीं हैं। 'मैं' के इस दुस्साहस पर भीड़ द्वारा उसे पीट दिया जाता है, 'बट नॉट ह्यूमन' लिखी तख्ती को रोंदकर लोग आगे बढ़ जाते हैं। लघुकथा साबित करती है कि–धर्म के नाम पर संगठित लोग मनुष्यता से कोसों दूर हैं।

भारतीय समाज में जातिवाद की सर्वव्यापकता को साहस के साथ उजागर करती है, पूरन सिंह की लघुकथा 'नीची जाति'। इस लवाकारीय कथा रचना में वे एक-साथ अनेक सामाजिक बुराइयों पर उंगली रखते हैं। उन कारणों पर भी, जो हिंदू समाज के अस्पृश्य समझे जाने वर्ग पर मुस्लिम समाज के निकट जाने का दबाव बनाते हैं। मुस्लिम वर्ग से अपनापन महसूस करने वाला कथानायक, सौहार्दवश जब अपने एक मुसलमान सहकर्मी के घर जाता है, तब सहकर्मी के 'अब्बा' द्वारा खुलकर कथानायक की जाति पूछना उसे यथार्थ की उस कठोर जमीन पर ला पटकता है, जिससे अभी तक वह अनजान था। देखिए–

"आप हिंदुओं में नीची जाति से हैं क्या।" उन्होंने एक ही सांस में पूछ लिया था।

"मैं नीची जाति में से हूं या नहीं, यह दीगर सवाल है बाबूजी; लेकिन क्या मुसलमान, अर्थात् आप भी, मुझे नीची जाति का मानते हैं? यह जरूरी सवाल है।" मैंने पूछा था अकरम के अब्बू से तो वे कुछ नहीं बता पा रहे थे।

इस प्रकार, कथानायक को जब मुसलमानों के बीच जाकर भी 'नीची जाति' का प्रश्न मिला, तो उसका भ्रम टूट गया। कथा बताती है, कि–जाति का जहर हर धर्म में फैला हुआ है और इंसानियत को तेजी से निगल रहा है।

'लूडो' घरेलू जीवन में स्त्री-पुरुष संबंधों की सूक्ष्म असमानता को तो उजागर करती ही है, यह भी बताती है कि परिवार में सौहार्द के मूल्य को जो जानता-पहचानता है, वह सिर्फ लूडो में ही हारता है, जीवन में नहीं। 'लूडो' की बिसात पर रोज-रोज की जीत सुभद्रा को बोध कराती है कि औरत की निरंतर जीत पुरुष अहं को नहीं, रिश्ते को तोड़ सकती है। उसी दिन से वह बिसात पर हारना शुरू कर देती है और पारिवारिक सौहार्द को बचा लेती है।

पूरन सिंह की लघुकथाओं में बिंब की बुनावट बहुत बारीक और बोलने वाली होती है। स्त्री के जीवनभर के त्याग, सेवा, समर्पण और अनदेखे श्रम का मार्मिक प्रतीक है लघुकथा 'रीढ़ की हड्डी' । कथानायिका का दर्द महज शारीरिक नहीं, बल्कि गलत-सही हर फरमान पर उम्र भर 'जी हुजूर' कहते रहने की विवशता से उपजा मानसिक क्लेश है। लघुकथा में कथा नायिका के तीन हितैषी प्रस्तुत किए गये हैं–पिता समान उसका बड़ा भाई, उसे दुखी न देख पाने वाला पति और पुत्र। इनके माध्यम से कथाकार ने समूची पितृसत्ता को ला खड़ा किया है। बिना शिकायत, बिना थके, झुकते रहने की स्त्री-पीड़ा का परिणाम है–'रीढ़ की हड्डी' का लाइलाज दर्द। डॉक्टर की सलाह 'अब झुकना मत' बहुत देर से आई है, इतनी देर से कि, जब झुकने को कुछ बचा ही नहीं। यह लघुकथा स्त्री की सहनशीलता और अदृश्य संघर्षों की गहरी पड़ताल प्रस्तुत करती है।

लघुकथा 'आंचल' शहरी कला-संस्कृति और हाशिए के जीवन के बीच मौजूद असमानता, भावनात्मक दूरी और वर्गीय विभाजन को उजागर करती है। शन्नो, हमेशा ही रंग-कलाकारों को चाय पिलाती है और ऑडियंस की भीड़ बढ़ाने के उद्देश्य से अपने बच्चों को दर्शक बनाकर 'आंचल' में भेजती रही है। आज जब उसके दूध पीते बच्चे को मंच पर 'मृत बालक' के पात्र के रूप में सौंपने की बात की जाती है, तो मां होने की उसकी अस्मिता जाग उठती है। 'आंचल' थियेटर, जो कभी-कभार हजार-पांच सौ रुपए उसे दे जाने का स्रोत-जैसा था, शन्नो की ममता के आगे भरभराकर ढह जाता है। यह कथा बताती है कि थियेटर जिसे 'टूल' समझने की गलती करता है, लोक में उसका क्या मूल्य है। आत्मसम्मान और ममता बाजार की भाषा नहीं जानते।

'शातिर औरत' लघुकथा व्यंग्यात्मक शैली में लिखी गयी है। कथा इस विडंबना को उजागर करती है कि भयभीत व्यवस्था धार्मिक सोच वाली अथवा बनाव-शृंगार में डूबी रहने वाली महिलाओं को नहीं,

सोचने–समझने–लिखने वाली महिलाओं को शातिर मानती है।

लघुकथा 'पेट' मानवीय संवेदना और वर्गीय विडंबना का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है। पूरन सिंह ने भूख की विकरालता को इतनी संजीदगी और विश्वास से उकेरा है कि पाठक भीतर तक हिल जाता है। अमोधा का आत्मसम्मान, विवशता के आगे झुकता नहीं, बल्कि पेट की पुकार को प्राथमिकता दे उठता है। यह लघुकथा उन नैतिक उपदेशकों की अपेक्षाओं पर भी सवाल उठाती है जो भूख की वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं। मिश्राईन की दया 'दान' के नाम पर आत्मसंतोष पाती है। यह लघुकथा उच्च–वर्गीय समाज के अमानवीयता चरित्र, जैसे 'बचा–खुचा खाना या तो कुत्ते को देना है या गरीब को' तथा वर्गीय असमानता की क्रूर तस्वीर पेश करती है। अंत में कथानायक का भावनात्मक रूप से टूटना और अमोधा के गले से लगकर रो पड़ना भी उस सच्चाई का स्वीकार है, जिससे वह खुद या तो अनभिज्ञ था या आंखें चुरा रहा था।

पूरन सिंह की 'मन' को स्त्री–विमर्श की उत्कृष्टतम लघुकथाओं में रखा जा सकता है। इसमें स्त्री–जीवन में शारीरिक संबंधों की एकपक्षीयता, भावनात्मक उपेक्षा और आत्म–अस्मिता के दमन को लेखक ने अद्‌भुत साहस के साथ मार्मिक रूप से उजागर किया है। इस लघुकथा में दर्ज '28 वर्ष' का समय एक प्रतीक मात्र है। यह समय दिन, महीने, साल, कुछ भी हो सकता है; इतने घंटे, मिनट, सैकेंड भी। पीड़ादायक यह है कि इतने समय तक केवल 'शरीर' बनी रही पत्नी अपने आप को व्यक्त करने का साहस नहीं संजो पाई; वह स्पर्श की ही वस्तु बनी रही, भावना की नहीं; व्यक्त होने का अवसर तो उसे कभी दिया ही नहीं गया । उस समय, जब समूचा साहस बटोरकर वह अपने अधिकार, संवेदना और अस्तित्व की बात करती है, तब पति करवट लेकर खर्राटे लेने लगता है। यह लघुकथा बताती है कि पुरुष का 'मन' केवल अपनी संतुष्टि तक सीमित रहता है। स्त्री की दबी हुई चीखों और उसके मौन प्रतिरोध को वह न तो सुनना चाहता है, न सुनने लायक बनना चाहता है।

लघुकथा 'बरसात' बरसात के सौंदर्य और संघर्ष दो विपरीत विपरीत बिंदुओं पर विमर्श प्रस्तुत करती है। बरसात की उपयोगिता, अनुपयोगिता पर पुरातन कथा–साहित्य में अनेक कथाएं हैं। इस लघुकथा में बेटी के लिए बरसात रोमांटिक एहसास है, लेकिन पिता के लिए वह बचपन की असुरक्षा, गरीबी और मां की आंखों से बरसता सैलाब है। कथा रेखांकित करती है कि आर्थिक स्थिति समय के साथ बदल सकती है, लेकिन असहाय स्थितियों की यादें व्यक्ति की संवेदना को अमिट बना देती हैं। उसे केवल अपने लिए नहीं, दूसरों की भूख और भय के लिए भी सोचने को विवश करती हैं। देखिए–

बेटी ने जान लिया कि पापा अपने अतीत में चले गए थे, "पापा मत सोचा करो पुराने दिनों के बारे में। अब हम गरीब नहीं हैं।"

"और जो गरीब हैं, उनका क्या !" न चाहकर भी बोल गया था मैं। लघुकथा 'मां' मां–बेटे के संवाद के माध्यम से मातृत्व की निस्वार्थता और भावनात्मक गहराई को मार्मिक रूप में प्रस्तुत करती है। बेटा अपनी सफलता और वैभवपूर्ण भौतिक उपलब्धियां मां को गिनाकर खुश करना चाहता है, पर मां की चिंता सिर्फ यही है कि बेटे ने खाना खाया या नहीं। कम से कम भारतीय मां की प्राथमिकता तो संतान की शारीरिक और मानसिक भलाई ही है। लघुकथा यह तो उजागर करती ही है कि मां का प्रेम स्नेह की सहजता में होता है, प्रदर्शन में नहीं; यह भी बताती है कि महानगरों में सर्वसुविधा सम्पन्न नौकरी पाने वाले नौनिहालों का शारिरिक–मानसिक शोषण कितना हो रहा है। इसे बताने के लिए कथाकार पूरन सिंह ने केवल एक वाक्य का प्रयोग किया है–

"तूने कुछ खाया कि नहीं।" मां के इतना पूछने पर बेटा फोन कान से लगाए ही रह गया; और मां आज भी उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रही है।

संबंधों को 'बोझ' न मानने की थीम पर हिन्दी में अनेक लघुकथाएं लगभग एक ही प्रकार से लिखी जा चुकी है। इनमें पूरन सिंह की 'बोझ' भी आ जुड़ी है। अन्तर मात्र यह है कि विगत लघुकथाओं में 'बोझ' के रूप में भाई है, इसमें मां है।

लघुकथा 'ज्ञानाश्रय' में पूरन सिंह धर्म, आस्था और आडंबर के अंत–

र्विरोधों को बेनकाब करते हैं। सत्संग स्थल, जहां दिन भर आध्यात्मिकता और सदाचार की बातें होती हैं, वहीं अवकाश के पल घिनौने हो जाते हैं। लेखक ने एक असहाय व्यक्ति की दृष्टि से इस पाखंड और पतन को उजागर करने का प्रयास किया है कि धर्म संसदों का आंतरिक यथार्थ घोर पाखंड और नैतिक पतन से परिपूरितहै। लघुकथा का अंतिम दृश्य धार्मिक संस्थानों की खोखली नैतिकता पर करारा तमाचा लगाता है। इससे कथा की मार्मिकता और प्रहारशीलता दोनों बढ़ गयी हैं।

धार्मिक उन्माद और कट्टरता के भयावह परिणामों को गहराई से उजागर करती है लघुकथा 'विलाप'। पं. शिवदत्त चौबे, जो सांप्रदायिक घृणा को हवा देकर भीड़ को हिंसा के लिए उकसाते हैं, स्वयं उसी हिंसा के शिकार हो जाते हैं। यह कथा दर्शाती है कि जब नफरत की आग भड़कती है, तो वह अपने-पराये का भेद नहीं करती–सब-कुछ भस्म कर देती है। यह एक कठोर आत्मबोध है कि घृणा का बीज बोने वाला ही सबसे पहले उसका फल चखता है।

लघुकथा 'स्कूल यूनिफार्म' शिक्षा व्यवस्था की कठोर अनुशासनप्रियता और उसमें छिपे अमानवीय पक्ष को मार्मिक ढंग से उजागर करती है। एक गरीब छात्र की असहाय स्थिति और आत्मसम्मान की त्रासदी को लेखक ने बेहद प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। इस लघुकथा का उल्लेखनीय पक्ष शिक्षक के कठोर व्यवहार का आत्मग्लानि में बदल जाना है। यह दृश्य दर्शाता है कि अनुशासन जब संवेदनाओं से वंचित हो जाता है, तो वह अपमान और पीड़ा का कारण बनता है; लेकिन वही जब संवेदनाओं से जुड़ जाता है तो अगाध अपनत्व का कारण बन जाता है। इस लघुकथा के अंत की करुणा कथा को भावनात्मक ऊंचाई प्रदान करती है, पाठक को भिगो देती है। देखिए–

जब मुझसे पीड़ा सही नहीं गई तो मैने नेकर की बैल्ट खोलकर कमीज अंदर की ही थी कि सभी बच्चे एक साथ चिल्लाए थे–"ए देखो...ऐ देखो ...चूतड़ दिखे...चूतड़ दिखे।"

दरअसल, कमीज नेकर के अंदर पैक करते ही मेरे चीथड़ा-चीथड़ा हुए नेकर से मेरे चूतड़ दिखाई देने लगे थे । बच्चों के चिल्लाए जाने पर जो पीड़ा मुझे हुई थी, वह पीड़ा मेरे क्लास टीचर के मुझ पर डंडे बरसाए जाने से करोड़ों गुना ज्यादा थी जो आंसुओं से नहीं निकली थी। वह अंदर ही अंदर समा गई थी। मेरे क्लास टीचर ने मुझे पीटना बंद कर दिया था। डंडा एक तरफ फेंककर वे भी बिलख पडेघ थे। वे सिर्फ इतना ही कह पा रहे थे, 'माफ कर दे रामनाथ...... मेरे बच्चे मुझे माफ कर दे'। और उन्होंने मुझे अपनी दोनों बाहों में ऐसे भर लिया था मानो चिड़िया अपने बच्चे को अपने पंखों में छिपा लेती है।

यह करुणा वस्तुत: पूरन सिंह के हृदय की स्थायी करुणा है जो उनकी लघुकथाओं में यत्र-तत्र स्थान पा जाती है। याद कीजिए, 'पेट' और 'बरसात' जैसी उनकी लघुकथाएं।

लघुकथा 'कांवड़िया' धार्मिक आस्था के नाम पर फैली अनुशासन-हीनता, अंधभक्ति, अमानवीयता, असंवेदनशीलता और क्रूरता पर तीखा प्रहार करती है। कांवड़ियों की आस्था मानवता और करुणा से विहीन होकर कब उग्र भीड़ में बदल जाएगी, कोई नहीं जानता। दुर्भाग्य यह कि प्रशासन भी उन उच्छृंखलों के साथ खड़ा होता है। लेखक ने आस्था और हिंसा के इस टकराव को गहरी मार्मिकता और विडंबना के साथ प्रस्तुत किया है। कथा सवाल उठाती है कि–क्या ईश्वर की पूजा मानवता की कीमत पर होनी चाहिए?

लघुकथा 'महाकाली' धार्मिक संस्थानों में व्याप्त ढोंग, पाखंड और स्त्री उत्पीड़न की कड़ी आलोचना है। लेखक ने आस्था की आड़ में चल रहे शोषण और हिंसा को बेनकाब करते हुए एक साहसी लड़की के माध्यम से प्रतिरोध और न्याय की स्थापना की है। पुजारी, जो जनता की श्रद्धा का केंद्र था, असल में विकृत और भ्रष्ट आचरण का प्रतीक है। जब लड़की विद्रोह करती है, तो वही समाज जो उसे शिकार बना रहा था, 'महाकाली' घोषित कर डालता है। यह विडंबना दर्शाती है कि जब तक स्त्री विरोध नहीं करती, वह पूजनीय नहीं मानी जाती। यह लघुकथा जहां साहस और व्यवस्था-विरोध की प्रभावशाली प्रतीक बनकर उभरती है, वहीं यह भी स्थापित करती है कि

भ्रष्ट लोगों का कॉकस साहस और विरोध के भीतर से भी अपनी ऐय्याशी के साधन जुटा लेता है।

लघुकथा 'भूत' में लेखक ने एक भूखे बच्चे की मासूम जिजीविषा और एक मां की विवशता को अत्यंत संवेदनशीलता से उकेरा है। श्मशान जैसे डरावने स्थान पर भोजन खोजना इस बात का प्रतीक है कि भूख भय से भी बड़ी है। मां का यह कहना कि–'भूत, भूख से बड़ा थोड़े ही होता है।' उस समाज पर करारा प्रहार करती है जो अंधविश्वासों को तो पालता है, पर गरीब की भूख को अनदेखा करता है। यह कथन 'पेट' में कहे गये कथन के समान्तर उसी मजबूती से यहां भी खड़ा है।

लघुकथा 'इंतजार' आधुनिक समाज में पारिवारिक मूल्यों के पतन और वृद्धों की उपेक्षा का करुण चित्र प्रस्तुत करती है। किराए के लालच में पिता की उपस्थिति बेटे को बोझ लगने लगती है। पिता की आंखों से चुपचाप गिरती बूंदें इस अमानवीयता का विवश और मौन प्रतिवाद हैं।

लघुकथा 'ब्लैकमेल' वर्गीय विषमता, जातिगत पूर्वग्रह और बच्चों की दुनिया में मौजूद सामाजिक भेदभाव को अत्यंत सटीकता से उजागर करती है। एक सफाईकर्मी का बेटा अपने टिफिन में बासी सब्जी लाता है, जबकि उसका ब्राह्मण सहपाठी ताजी। मित्रतावश वह बासी सब्जी खाता तो है, सामाजिक शर्म के वशीभूत स्वीकार नहीं करता। दोस्ती के पीछे छिपी यह शर्म और भय असल में जातिवादी मानसिकता और सामाजिक जड़ता की देन है। यह कहानी यह तो दिखाती ही है कि असमानता के बीच भी आत्मसम्मान कैसे आवाज बनता है, यह भी दिखाती है कि बालमन किसी भी प्रकार के भेदभाव से अछूता होता है। छूत की बीमारी उसमें बचपन छिन जाने के बाद घर करती है।

वर्गीय संवेदनाओं, सांस्कृतिक स्मृतियों और सामाजिक अपमान की तीखी टकराहट को प्रस्तुत करती लघुकथा है 'बाजरे की रोटी'। गांव की सादगी और संघर्षपूर्ण बचपन की स्मृति जब 'बाजरा' के बहाने साझा होती है, तो उसमें सम्मान और आत्मीयता की तलाश होती है। परन्तु एक सहकर्मी का यह कहना कि 'बाजरा तो जानवर खाते थे' उस स्मृति को अपमान में बदल देता है। 'कैसे-कैसे अपमान झेलकर मां-पिताजी ने हमें पाला है' जैसा अनकहा विचार आंसू बनकर बह पड़ता है। कथा दिखाती है कि अनजाने ही कहे गये सहज शब्द भी किसी भुक्तभोगी को कितनी गहरी चोट पहुंचा सकते हैं।

लघुकथा 'सुराही' धार्मिक पाखंड, जातिवादी मानसिकता और पुरुषसत्तात्मक ढोंग का मुखर पर्दाफाश करती है। पंडितजी एक ओर तो धर्म, पूजा और ब्राह्मणत्व का मुखौटा पहनते हैं, दूसरी ओर वासना की पूर्ति के लिए एक नाचने वाली स्त्री का शोषण करते हैं। विडंबना यह है कि शारीरिक संबंधों में उन्हें कोई अपवित्रता नहीं दिखती, लेकिन पानी पीने में जाति की 'शुद्धता' याद आ जाती है। यह कथा समाज की उस गहरी जातिवादी विकृति को उजागर करती है, जो आज भी जस की तस है।

लघुकथा 'मैं चुप नहीं रहूंगी' स्त्री के मौन, सहनशीलता और भीतर पलती असहनीय पीड़ा के विद्रोह को गहराई से उकेरती है। शारदा वर्षों तक अपमान और अन्याय को चुपचाप सहती रही, जिसे उसके पति ने उसकी 'अच्छाई' के रूप में रेखांकित किया। लेकिन शारदा का मौन उसका समर्पण नहीं, एक दमित आक्रोश था, जो अंततः फूट पड़ा। रुग्ण पत्नी को, पति का भावुक रूप से 'जनम-जनम की पत्नी' बनाने का ईश्वर से आग्रह उसके लिए एक यातना की पुनरावृत्ति जैसा था। यह कथा पितृसत्तात्मक सोच के विरुद्ध खड़ी हो जाने वाली स्त्री के मुखर विद्रोह को उसकी पूर्णता में दर्ज करती है। यह स्त्री की स्वायत्तता की उपेक्षा और विवाह संस्था के भीतर स्त्री के दर्द की अनदेखी पर एक सशक्त और विचारोत्तेजक विमर्श प्रस्तुत करती है। इसमें शारदा की दुत्कार, दमित स्त्री की चीत्कार बनकर उभरती है; देखिए–

"और अगर भगवान ने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली तो मैं समझूंगी कि दुनिया में भगवान है ही नहीं।" शारदा पहली बार चिल्लाकर बोली थी। ऐसा लगा था, जैसे ज्वालामुखी फट पड़ा हो, "क्यों मांगा तुमने मुझे जनम-जनम के लिए । इस जनम में तुमने जो मुझे दिया, पहले उसके बारे में सोचते, तब जनमों की बात करते। स्वार्थी कहीं

के।"

शारदा अब भी हांफ रही थी। उसके पति उसके मुंह की तरफ देख रहे थे और सोच रहे थे–उन्होंने तो सिर्फ भगवान से उसके लिए प्रार्थना ही की थी; लेकिन वह बुरा क्यों मान गई?

दरअसल, कोई भी आततायी, अपने किए आतंक को अपनी आंखों से देख नहीं पाता है।

लघुकथा 'वचन' भारतीय समाज की गहरी जातीय संरचना, पाखंड और छद्मपूर्ण समानता की पोल खोलती है। मंगुआ की निष्ठा और बलिदान के बावजूद, ठाकुर का उसको 'भाई' कहने का जो दावा था–वह क्षण भर में उस समय टूट गया जब मंगुआ ने सामाजिक बराबरी की एक मामूली इच्छा जताई। ठाकुर का हिंसक रूप उसी क्षण बाहर आ गया। उसका हिंसक प्रतिक्रिया देना उस व्यवस्था का प्रतीक है जो दलितों को समानता का अधिकार नहीं देना चाहती।

एक कलाकार के अंतर्मन, उसकी अधूरी प्रेमकथा और सृजन के भावनात्मक आयाम को संवेदनशीलता से उकेरती हैलघुकथा 'शिल्पकार'। शिल्पकार द्वारा बनाई गई एक स्त्री–मूर्ति में कला की परिपूर्णता तो है, पर प्रेम का अधूरापन रह गया है–यही उसकी आत्मग्लानि और पीड़ा का कारण है। कथा इस गहरे द्वंद्व को दर्शाती है कि कलाकार भले ही बाहरी रूप से सौंदर्य रच ले, पर यदि भीतर भावनात्मक रिक्तता हो तो अपनी कला को वह अधूरी ही आंकता है। खरीदार नवयुवक का मूर्ति को मात्र सुंदर वस्तु समझना और शिल्पकार का अपनी भावनात्मक टूटन से टकराना, इस लघुकथा का सौन्दर्य है। यही भाव इस लघुकथा को मार्मिकता और गहराई प्रदान करता है।

लघुकथा 'दाग' सामाजिक दोहरेपन, स्त्री–विरोधी मानसिकता और लेखक की आत्ममुग्धता को केंद्र में रखकर लिखी गयी है और उसकी तीखी आलोचना करती है। एक लेखक, जो वेश्या जैसी हाशिये पर खड़ी महिलाओं पर सहानुभूतिपूर्ण लेखन करता है, जब वास्तविक जीवन में उन्हीं में से एक से मिलता है, तो उसकी सारी सहानुभूति और आदर्श धराशायी हो जाते हैं। रानी के आत्मसम्मान और सच्चाई के आगे लेखक की मानसिक संकीर्णता उजागर हो जाती है। कहानी प्रश्न उठाती है कि–क्या लेखक की संवेदना केवल शब्दों तक ही सीमित रहनी चाहिए? यह लघुकथा स्त्री सम्मान पर किये गये लेखकीय प्रहार के माध्यम से रचनात्मक नैतिकता के छद्म को उजागर करती है।

लघुकथा 'सौदा' इंसानियत के नाम पर कलंक बन चुके पारिवारिक–सामाजिक ताने–बाने और सुरक्षा तंत्र की अविश्वसनीयहो चुकी भूमिका का बेहद सघन चित्रण करती है। जहां एक ओर एक भाई अपनी ही बहन का सौदा एक बूढ़े से करता है, वहीं रक्षक की भूमिका में आया सिपाही भी उसका भक्षक बन जाता है। यह लघुकथा उस भयावह सच्चाई को उजागर करती है, जहां एक लड़की के विश्वास को एक वर्दीध ारी ही छिन्न–भिन्न कर डालता है। लघुकथा स्त्री–शोषण, विश्वासघात और पितृसत्तात्मक हिंसा के वीभत्स रूप पाठक के सामने रखती है।

'मासूम श्रेया' हो, 'मां' हो, 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि' हो, 'नीची जाति' हो या कोई अन्य, पूरन सिंह की लघुकथाओं में पात्रों द्वारा पूछे गये लगभग सभी प्रश्न अनुत्तरित रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि लेखक एक उत्तरविहीन समाज में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जूझ रहा है। यह जूझना ही उसके लेखन की ईमानदारी और सार्थकता है।

''यदि हम एक संयुक्त, एकीकृत, आधुनिक भारत चाहते हैं तो सभी धर्मों के शास्त्रों की संप्रभुता का अंत होना चाहिए।''

डॉ. बी. आर. आंबेडकर

प्रतिवेदन

इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉन्फ्रेंस

(उपक्रम एमएसएस), जालंधर, पंजाब

28 जून 2025 को मूल निवासी सभ्यता संघ इकाई पंजाब द्वारा गुरु नानक देव जिला पुस्तकालय, सतगुरु नामदेव चौक, जालंधर में एक कवि सम्मेलन और कलात्मक अभियान का आयोजन किया गया। जिसमें पूरे पंजाब से कवियों, लेखकों और बच्चों ने अपनी प्रतिभा पेश की। कवि सम्मेलन की शुरुआत मुख्य अतिथि प्रख्यात बहुजन लेखक और विद्वान सोहन सहजल जी के उद्घाटन भाषण से हुई। इस भाषण की अध्यक्षता सुरिंदर सिंह, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, मूलनिवासी सभ्यता संघ ने की। इस भाषण में सभ्यता और कला के महत्व के बारे में जानकारी देने के लिए बामसेफ सेंटर कमेटी के सदस्य मा. नितिन कुमार, मंगल चंद्र हांसदा उपाध्यक्ष मूलनिवासी सभ्यता संघ, शीलबोधि जी प्रभारी (साहित्य) मूलनिवासी सभ्यता संघ और मंजीत सिंह, अध्यक्ष मूलनिवासी सभ्यता संघ, पंजाब ने अपने विचार प्रस्तुत किए। इस भाषण में बच्चों द्वारा कविताएं और गीत प्रस्तुत किए गए। इस अवसर पर मैडम मनजीत कुमार द्वारा तैयार किए गए थाबलके गांव के बच्चे, मास्टर हरमेश लाल (राज्य पुरस्कार विजेता) ढाणी गांव के बच्चे तथा हादियाबाद फगवाड़ा से मा रमेश कौल द्वारा तैयार किए गए बच्चों, प्रगति कला केंद्र जलालाबाद द्वारा मास्टर किरणदीप के नेतृत्व में तैयार की गई कविताओं, नाटकों तथा कोरियोग्राफियों की प्रस्तुति की गई। इसके पश्चात दूसरी पंक्ति में बाहर से आए कवियों तथा लेखकों में कुलविंदर सिंह गाखल राज्य पुरस्कार विजेता अध्यक्ष पंजाब साहित्य मंच जालंधर तथा टीम सदस्य श्रीमती साहिबा जीतन कौर, सरदार अमर सिंह अमर, सरदार इंदर सिंह मिसरी, गीतकार अवतार सिंह बैंस, श्री दलजीत मेहम्मी, सुखदेव सिंह गंधवा, विजय कुमार भगत, आदि दुनिया जालंधर के अध्यक्ष श्री जगदीश डालिया जी, फगवाड़ा से मैडम सतविंदर कौर, सुखपाल सिंह झम्मट आदि ने अपनी कविताएं प्रस्तुत की। इस अवसर पर मूल द्वारा बेगमपुरा मैगजीन का विमोचन किया गया। सिंधु घाटी सभ्यता की स्थापना के लिए शीलबोधि जी को मूल को भेंट किया गया। मंजीत सिंह, अध्यक्ष मूलनिवासी सभ्यता संघ पंजाब। मूल. सोहन शहजल ने अपनी कविताओं से कवि सम्मेलन का समापन किया और अतिथियों एवं बच्चों को ट्रॉफी देकर सम्मानित किया। अंत में एडवोकेट हरभजन सांपला जी ने आये हुए अतिथियों एवं कवियों का धन्यवाद किया। मुल. अहम सिंह प्रयागराज, मूल करम शील भारती और मूल। विजय वास्तविक दिल्ली से विशेष रूप से पहुंचे। इस अवसर पर मु. रामनाथ सुंडा (संपादक मूलनिवासी संग्राम), मूल.–बिहारीलाल गिंदा, मायल। रंजीव कुमार, मूल. सोढ़ी राम झल्ली, मूल. अशोक खेड़ा प्रदेश महासचिव बामसेफ, मास्टर ज्ञान सिंह, मूल. राम दास गुरु आदि विशेष रूप से पहुंचे। मुल. मंच संचालन हरभजन लाल जी ने बखूबी निभाया। मुल. अश्विनी बलाचौर, मूल. जतिंदर कुमार, मूल. इस कवि सम्मेलन एवं कला अभियान को सफल बनाने में बामसेफ के उपाध्यक्ष मेहर चंद, डॉ. गुरपाल सिंह आदि ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

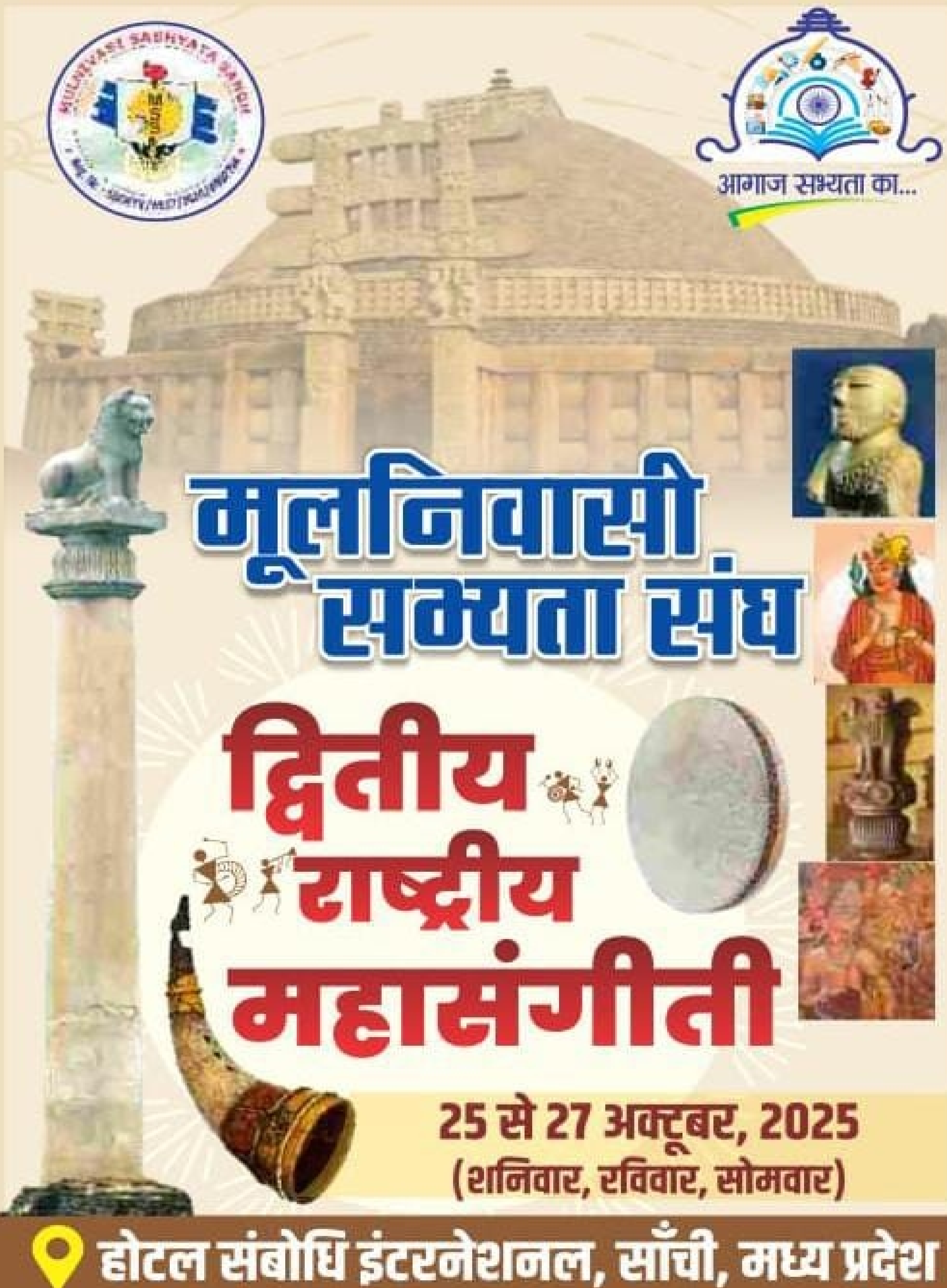
MULNIVASI SABHYATA SANGH
आगाज सभ्यता का...
मूलनिवासी सभ्यता संघ
द्वितीय राष्ट्रीय महासंगीती
25 से 27 अक्टूबर, 2025
(शनिवार, रविवार, सोमवार)
होटल संबोधि इंटरनेशनल, साँची, मध्य प्रदेश

हम आपके ऋणी हैं

साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य